संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

गुरुपूर्णिमा विशेषांक

हिन्दी

वर्ष : १०
अंक : ७९
जुलाई ९९
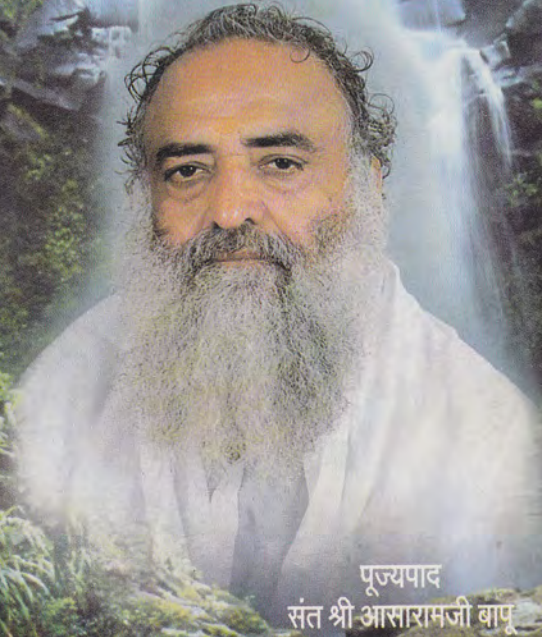
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

पूज्यश्री अपने साधनाकाल में

ऋषि प्रसाद

वर्ष : १०
अंक : ७९
९ जुलाई १९९९
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ८-००

सदस्यता शुल्क
भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-
नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)
विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) पंचवार्षिक : US $ 120
(३) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction.

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
SONY चैनल पर 'ऋषि प्रसाद' रोज सुबह ७.३० से ८

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

गुरुपूजन का पर्व

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गुरुपूर्णिमा अर्थात् गुरु के पूजन का पर्व।

गुरुपूर्णिमा के दिन छत्रपति शिवाजी भी अपने गुरु का विधि-विधान से पूजन करते थे।

...किन्तु आज सब लोग अगर गुरु को नहलाने लग जायें, तिलक करने लग जायें, हार पहनाने लग जायें तो यह संभव नहीं है। लेकिन षोडशोपचार की पूजा से भी अधिक फल देनेवाली मानसपूजा करने से तो भाई! स्वयं गुरु भी नहीं रोक सकते। मानसपूजा का अधिकार तो सबके पास है।

'गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर मन-ही-मन हम अपने गुरुदेव की पूजा करते हैं... मन-ही-मन गुरुदेव को कलश भर-भरकर गंगाजल से स्नान कराते हैं... मन-ही-मन हम उनके श्रीचरणों को पखारते हैं... परब्रह्म परमात्मस्वरूप श्रीसद्गुरुदेव को हम वस्त्र पहनाते हैं... सुगंधित चंदन का तिलक करते हैं... सुगंधित गुलाब एवं मोगरे की माला पहनाते हैं... मनभावन सात्त्विक प्रसाद का हम भोग लगाते हैं... मन-ही-मन धूप-दीप से हम गुरु की आरती करते हैं...'

इस प्रकार हर शिष्य मन-ही-मन अपने दिव्य भावों के अनुसार अपने सद्गुरुदेव का पूजन करके गुरुपूर्णिमा का पावन पर्व मना सकता है। करोड़ों जन्मों के माता-पिता, मित्र-संबंधी जो न दे सके, सद्गुरुदेव वह हँसते-हँसते दे डालते हैं।

हे गुरुपूर्णिमा ! हे व्यासपूर्णिमा ! तू कृपा करना... गुरुदेव के साथ मेरी श्रद्धा की डोर कभी टूटने न पाये... मैं प्रार्थना करता हूँ गुरुवर ! आपके श्रीचरणों में मेरी श्रद्धा बनी रहे, जब तक है जिन्दगी...

वह भक्त ही क्या जो तुमसे मिलने की दुआ न करे ?
भूल प्रभु को जिंदा रहूँ कभी ये खुदा न करे।

हे गुरुवर !

लगाया जो रंग भक्ति का, उसे छूटने न देना।
गुरु तेरी याद का दामन, कभी छूटने न देना॥
हर सांस में तुम और तुम्हारा नाम रहे।
प्रीति की यह डोरी कभी टूटने न देना॥
श्रद्धा की यह डोरी कभी टूटने न देना॥
बढ़ते रहे कदम सदा तेरे ही इशारे पर।
गुरुदेव ! तेरी कृपा का सहारा छूटने न देना॥
सच्चे बनें और तरक्की करें हम,
नसीबा हमारी अब रूठने न देना।
देती है धोखा और भुलाती है दुनिया,
भक्ति को अब हमसे लुटने न देना॥
प्रेम का यह रंग हमें रहे सदा याद,
दूर होकर तुमसे यह कभी घटने न देना।
बड़ी मुश्किल से भरकर रखी है करुणा तुम्हारी...
बड़ी मुश्किल से थामकर रखी है श्रद्धा-भक्ति तुम्हारी...
कृपा का यह पात्र कभी फूटने न देना॥
लगाया जो रंग भक्ति का उसे छूटने न देना,
प्रभुप्रीति की यह डोर कभी छूटने न देना॥

आज गुरुपूर्णिमा के पावन पर्व पर हे गुरुदेव! आपके श्रीचरणों में अनंत कोटि प्रणाम... आप जिस पद में विश्रांति पा रहे हैं, हम भी उसी पद में विश्रांति पाने के काबिल हो जायें... अब आत्मा-परमात्मा से जुदाई की घड़ियाँ ज्यादा न रहें... ईश्वर करे कि ईश्वर में हमारी प्रीति हो जाये... प्रभु करे कि प्रभु के नाते गुरु-शिष्य का संबंध बना रहे...

गुरु की चाह

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

ऋषि कहते हैं :

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।

जो ब्रह्मा की नाईं हमारे हृदय में उच्च संस्कार भरते हैं, विष्णु की नाईं उनका पोषण करते हैं और शिवजी की नाईं हमारे कुसंस्कारों एवं जीवभाव का नाश करते हैं, वे हमारे गुरु हैं। फिर भी ऋषियों को पूर्ण संतोष नहीं हुआ, अतः उन्होंने आगे कहा :

गुरुर्साक्षात् परब्रह्म
तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

ब्रह्माजी ने तो सृष्टि की रचना की, विष्णुजी ने पालन-पोषण किया और शिवजी संहार करके नई सृष्टि की व्यवस्था करते हैं लेकिन गुरुदेव तो इन सारे चक्करों से छुड़ानेवाले परब्रह्मस्वरूप हैं, ऐसे गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।

पुष्पों के इर्द-गिर्द मँडराने से क्या फायदा होता है, किसी भ्रमर से पूछो। जल में क्या मजा आता है, किसी जलचर से पूछो। ऐसे ही संत-महापुरुषों के सान्निध्य से क्या लाभ होता है, यह किसी सत्‌शिष्य से ही पूछो।

सम्राट के साथ राज्य करना भी बुरा है,
न जाने कब रुला दे !
फकीरों के साथ भीख माँगकर रहना भी अच्छा है,
न जाने कब मिला दे !

आज दुनिया में जो थोड़ी-बहुत रौनक दिख रही है, वह ऐसे सद्‌गुरुओं एवं सत्‌शिष्यों के कारण ही है। थोड़ा-बहुत जो आनंद है वह ऐसे फकीरों की करुणा का ही प्रसाद है।

भक्त लोग हनुमानजी से प्रार्थना करते हैं :

जय जय जय हनुमान गोसाईं।
कृपा करहुँ गुरुदेव की नाईं ॥

यह देवताओं जैसी कृपा की याचना नहीं है, गुरुदेव जैसी कृपा करते हैं वैसी कृपा की याचना है। गुरुदेव कैसी कृपा करते हैं ? जीव शिव से एक हो जाये- ऐसी गुरुदेव की निगाहें होती हैं। आनंदस्वरूप गुरुदेव अपने शिष्य को भी उसी आनंद का दान देना चाहते हैं जो आनंद किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा परिस्थिति से आबद्ध नहीं है, जो आनंद कहीं आता-जाता नहीं है।

ऐसे सद्‌गुरुओं के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने का जो दिन है - वही है गुरुपूर्णिमा, व्यासपूर्णिमा।

संसारी मित्रों एवं संबंधियों से बहुत-बहुत मेहनत के बाद भी वह चीज नहीं मिलती जो

तुम्हारा यह सब स्वीकार कर रहे हैं तो तुमसे प्रार्थना है कि यदि मेरे गुरुदेव का प्रसाद लेने की तुम्हारी तैयारी न हो तो इन चीजों को लेकर मत आना। तुम्हें भी परिश्रम होता है, हमें भी परिश्रम होता है और सँभालनेवाले को भी परिश्रम होता है। यह परिश्रम हम तभी सहने को राजी हैं जब हमारे गुरुदेव का प्रसाद हजम करने की तुम्हारी तैयारी हो।

संतों के द्वारा, महापुरुषों के द्वारा, ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा मिलती है। यदि हम उसका बदला कुछ-न-कुछ चुकाएँ नहीं तो हम कृतघ्न हो जाएँगे। हम कृतघ्नता के दोष से बचें और कुछ-न-कुछ अभिव्यक्त करें। उनसे जो मिला है उसका बदला तो नहीं चुका सकते हैं फिर भी कुछ-न-कुछ भाव अभिव्यक्त करते हैं और यह भाव अभिव्यक्त करने का जो दिन है, उसे व्यासपूर्णिमा कहा जाता है।

> *तुम गुरुद्वार पर आते हो तो गुरु की बात भी तो माननी पड़ेगी। गुरुद्वार की बात यही है कि तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा हमको दे दो, तुम्हारी जो जात-पाँत है वह दे दो, तुम फलाने नाम के भाई या माई हो वह दे दो और मेरे गुरुदेव का प्रसाद 'ब्रह्मभाव' तुम ले लो। फिर देखो, तुम विश्वनियंता के साथ एकाकार होते हो कि नहीं।*

ऐसा ही कोई दिन था, जब हृदय भावों से भर गया और प्रेम उमड़ पड़ा। गुरुजी के पैर पकड़कर मैंने कहा : ''गुरुजी ! मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजिये।''

गुरुजी : ''सेवा करेगा ? जो कहूँगा वह करेगा ?''

मैंने कहा : ''हाँ, गुरुजी ! आज्ञा कीजिए, आज्ञा कीजिए।''

गुरुजी : ''जो माँगूँ वह देगा ?''

मैंने कहा : ''हाँ, गुरुजी ! जरूर दूँगा।''

गुरुजी चुप हो गये और मनीराम सोचने लगा : 'गुरुजी क्या माँगेंगे, क्या पता ? गुरुजी समाज की सेवा के लिये, आश्रम के लिये दो-तीन लाख रूपये माँगेंगे तो वह तो मेरे बड़े भाई के हाथ में है। यदि भाई नहीं देगा तो मैं भाई से कहूँगा कि, हमारी संपत्ति का आधा-आधा हिस्सा कर लें। फिर मेरे हिस्से के रूपये गुरुजी को दूँगा।

यह सोच ही रहा था कि इतने में गुरुजी ने कहा :

''जो माँगूँ वह देगा ?''

मैंने कहा : ''हाँ, गुरुजी !''

गुरुजी : **''तू आत्मज्ञान पाकर मुक्त हो जा और दूसरों को भी मुक्त करते रहना। इतना ही दे।''**

सद्गुरु की कितनी महिमावंत दृष्टि होती है ! हम लोगों को मन में होता है कि 'गुरुजी शायद यह न माँग लें, वह न माँग लें...' अरे, यदि सब कुछ देने के बाद भी अगर सद्गुरु-तत्त्व हजम होता है तो सौदा सस्ता है। न जाने कितनी बार किन-किन चीजों के लिए हमारा सिर चला गया ! एक बार और सही। ...और वे सद्गुरु यह पंचभौतिक सिर नहीं लेते, वे तो हमारी मान्यताओं का, कल्पनाओं का सिर ही ले लेते हैं ताकि हम भी परमात्मा के दिव्य आनंद का, प्रेम का, माधुर्य का अनुभव कर सकें।

गुरुजी ने नाम रखा है- आसाराम। हम आपकी हजार-हजार बातें इसी आस से मानते आये हैं, हजार-हजार अँगड़ाइयाँ इसी आस से सह रहे हैं कि आप भी कभी-न-कभी हमारी बात मान लो। ...और मेरी बात यही है कि **तत्त्वमसि।** तुम वही हो। सदैव रहनेवाला तो एक चैतन्य

आत्मा ही है । वही तुम्हारा अपना-आपा है, उसीमें जाग जाओ । मेरी यह बात मानने के लिए तुम भी राजी हो जाओ ।

बाहर से देखो तो लगेगा कि : 'आहाहा... बापजी को कितनी मौज है ! कितनी फूल-मालाएँ ! हजारों लोगों के सिर झुक रहे हैं... हजारों-हजारों मिठाइयाँ आ रही हैं... बापजी को तो मौज होगी !'

ना ना... इन चीजों के लिये हम बापजी नहीं हुए हैं। इन चीजों के लिये हम हिमालय का एकांत छोड़कर बस्ती में नहीं आये हैं। फिर भी तुम्हारा दिल रखने के लिये... तुमको जो आनंद हुआ है, तुम्हें जो लाभ हुआ है, उसकी अभिव्यक्ति तुम करते हो, जो कुछ तुम देते हो वह देते-देते तुम अपना 'अहं' भी दे डालो, इस आशा से हम तुम्हारे फल-फूल आदि स्वीकार करते हैं।

ब्रह्मवेत्ताओं के द्वारा जो मिला है उसका बदला तो कभी नहीं चुका सकते हैं फिर भी हम कुछ-न-कुछ भाव अभिव्यक्त करते हैं और यह भाव अभिव्यक्त करने का दिन है व्यासपूर्णिमा ।

तुम गुरुद्वार पर आते हो तो गुरु की बात भी तो माननी पड़ेगी । गुरुद्वार की बात यही है कि तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा हमको दे दो, तुम्हारी जो जात-पाँत है वह दे दो, तुम फलाने नाम के भाई या माई हो वह दे दो और मेरे गुरुदेव का प्रसाद 'ब्रह्मभाव' तुम ले लो । फिर देखो, तुम विश्वनियंता के साथ एकाकार होते हो कि नहीं ।

सारे ब्रह्मांड को जो नाच नचा रहा है उसके साथ मिलकर सारे ब्रह्मांड के स्वामी अपने परमात्मा को पा लो, इसीलिये लेना-देना होता है।

मुझे पता नहीं कि कल का दिन मैं जीऊँगा कि नहीं । मुझे इस देह का भरोसा नहीं है । इसीलिये मैं चाहता हूँ कि इस देह के द्वारा गुरु का कार्य जितना हो जाय, अच्छा है । गुरु का प्रसाद जो कुछ बँट जाय, अच्छा है और मैं बाँटने को तत्पर भी होता हूँ।

तुम कुछ-कुछ देते हो लेकिन मैं चाहता हूँ कि ये कुछ-कुछ लेने-देने के सौदे में शायद कोई असली सौदा भी हो जाय ! ॐ... ॐ... ॐ...

तुम्हारा यह सब स्वीकार कर रहे हैं तो तुमसे प्रार्थना है कि यदि मेरे गुरुदेव का प्रसाद लेने की तुम्हारी तैयारी न हो तो इन चीजों को लेकर मत आना । तुम्हें भी परिश्रम होता है, हमें भी परिश्रम होता है और सँभालनेवाले को भी परिश्रम होता है। यह परिश्रम हम तभी सहने को राजी हैं जब हमारे गुरुदेव का प्रसाद हजम करने की तुम्हारी तैयारी हो।

जिसको सच्ची प्यास होती है वह प्याऊ खोज ही लेता है। फिर उसके लिये हिन्दू-मुसलमान, ईसाई-पारसी, वाद-संप्रदाय नहीं बचता है । प्यासे को पानी चाहिए । ऐसे ही यदि तुम्हें परमात्मा की प्यास है और तुम जिस मजहब, मत-पंथ में हो, उसमें यदि प्यास नहीं बुझती है तो उस मत-पंथ के बाड़े तोड़कर किसी फकीर तक पहुँच जाओ । शर्त यही है कि प्यास ईमानदारीपूर्ण होनी चाहिए, ईमानदारीपूर्ण पुकार होनी चाहिए।

तुम्हें जितनी प्यास होगी, काम उतना जल्दी होगा । यदि प्यास नहीं होगी तो प्यास जगाने के लिये संतों को परिश्रम करना पड़ेगा और संतों का परिश्रम तुम्हारी प्यास जगाने में हो, उसकी अपेक्षा जगी हुई प्यास

को तृप्ति प्रदान करने में हो तो काम जल्दी होगा । इसीलिये तुम अपने भीतर झाँक-झाँककर अपनी प्यास जगाओ ताकि वे ज्ञानामृत पिलाने का काम जल्दी से शुरू कर दें। अब वक्त बीता जा रहा है। न जाने कब, कहाँ, कौन चल दे ? कोई पता नहीं।

तुमको शायद लगता होगा कि तुम्हारी उम्र अभी दस साल और शेष है। लेकिन मुझे पता नहीं कि कल का दिन मैं जीऊँगा कि नहीं। मुझे इस देह का भरोसा नहीं है। इसीलिये मैं चाहता हूँ कि इस देह के द्वारा गुरु का कार्य जितना हो जाय, अच्छा है। गुरु का प्रसाद जो कुछ बँट जाय, अच्छा है और मैं बाँटने को तत्पर भी होता हूँ। रात्रि को साढ़े बारह-एक बजे तक आप लोगों के बीच होता हूँ। सुबह तीन-चार बजे भी बाहर निकलता हूँ, घूमता हूँ। तुम सोचते होगे कि 'बापू थक गये हैं।' ना, मैं नहीं थकता हूँ। मैं देखता हूँ कि तुम्हारे अंदर कुछ जगमगा रहा है। उसको देखकर ही मेरी थकान उतर जाती है। मैं निहारता हूँ कि तुम्हारे अंदर कोई ईश्वरीय नूर झलक रहा है, तो मेरी थकान उतर जाती है। फिर भी कहीं थकान आती है तो खिड़की बंद करके पानी पीकर आत्मा में गोता मार लेता हूँ। फिर तुमको श्रद्धा और तत्परता से युक्त पाता हूँ तो मैं ताजा हो जाता हूँ। सुबह सात बजे से रात्रि के बारह-एक बजे तक तुम्हारे बीच होता हूँ और ताजे-का-ताजा दिखता हूँ... केवल इसी आशा से कि ताजे-में-ताजा जो परमात्मा है, जिसको कभी थकान नहीं लगती है, उस चैतन्यस्वरूप आत्मा में शायद तुम भी जाग जाओ...

सत् शिष्य के लक्षण

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सत्शिष्य के लक्षण बताते हुए कहा है कि :

अमानमत्सरो दक्षो निर्ममो दृढसौहृदः ।
असत्वरोऽर्थजिज्ञासुः अनसूयुः अमोघवाक् ॥

'सत्शिष्य मान और मत्सर से रहित, अपने कार्य में दक्ष, ममतारहित, गुरु में दृढ़ प्रीति करनेवाला, निश्चल चित्तवाला, परमार्थ का जिज्ञासु और ईर्ष्यारहित एवं सत्यवादी होता है।'

इस प्रकार के नव गुणों से जो सुसज्जित होता है ऐसा सत्शिष्य सद्गुरु के थोड़े-से उपदेश मात्र से आत्म-साक्षात्कार करके जीवन्मुक्त पद में आरूढ़ हो जाता है।

ऐसे पद को पाये हुए ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का सान्निध्य साधक के लिए नितांत आवश्यक है। साधक को ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का सान्निध्य मिल भी जाये, लेकिन उसमें यदि इन नव गुणों का अभाव है तो उसे ऐहिक लाभ जरूर होता है, किन्तु आत्म-साक्षात्कार के लाभ से वह वंचित

रह जाता है ।

अमानित्व, ईर्ष्या का अभाव तथा मत्सर का अभाव- इन सद्‌गुणों के समावेश से साधक तमाम दोषों से बच जाता है एवं साधक का तन और मन आत्म-विश्रांति पाने के काबिल हो जाता है।

सत्‌शिष्यों का यह स्वभाव होता है : वे आप अमानी रहते हैं और दूसरों को मान देते हैं। जैसे, भगवान राम स्वयं अमानी रहकर दूसरों को मान देते थे।

साधक को क्या करना चाहिए ? वह अपनी बराबरी के लोगों को देखकर न ईर्ष्या करे, न अपने से छोटों को देखकर अहंकार करे और न ही अपने से बड़ों के सामने कुंठित हो, वरन् सबको गुरु का कृपापात्र समझकर, सबसे आदरपूर्ण व्यवहार करे, प्रेमपूर्ण व्यवहार करे। ऐसा करने से साधक धीरे-धीरे मान, मत्सर एवं ईर्ष्यारहित होने लगता है। खुद को मान मिले ऐसी इच्छा रखने पर मान नहीं मिलता है तो दुःख होता है और मान मिलता है तो सुखाभास होता है एवं नश्वर मान की इच्छा ओर बढ़ती है । इस प्रकार मान की इच्छा मनुष्य को गुलाम बनाती है जबकि मान की इच्छा से रहित होने से मनुष्य स्वतंत्र बनता है । इसलिए साधक को हमेशा मानरहित बनने की कोशिश करनी चाहिए । जैसे, मछली जाल में फँसती है तो छटपटाती है, ऐसे ही जब साधक प्रशंसकों के बीच में आये तब उसका मन छटपटाना चाहिए। जैसे, लुटेरों के बीच आ जाने पर सज्जन आदमी जल्दी से वहाँ से खिसकने की कोशिश करता है ऐसे ही साधक को प्रशंसकों, प्रलोभनों एवं विषयों से बचने की कोशिश करनी चाहिए।

गुरु में दृढ़ प्रीति करने से मन का मैल तो दूर होता ही है, साथ ही उनका उपदेश भी शीघ्र असर करने लगता है, जिससे मनुष्य की अविद्या और अज्ञान भी शीघ्र नष्ट हो जाता है।

जो तमोगुणी व्यक्ति होता है वह चाहता है कि 'मुझे सब मान दें और मेरे पैरों तले सारी दुनिया रहे ।' जो रजोगुणी व्यक्ति होता है वह कहता है कि 'हम दूसरों को मान देंगे तो वे भी हमें मान देंगे ।' ये दोनों प्रकार के लोग प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से कोशिश करते हैं अपना मान बढ़ाने की ही । मान पाने के लिए वे संबंधों के तंतु जोड़ते ही रहते हैं और इससे इतना बहिर्मुख हो जाते हैं कि जिससे संबंध जोड़ना चाहिए उस अंतर्यामी परमेश्वर के लिए उनको फुरसत ही नहीं मिलती और आखिर में अपमानित होकर जगत से चले जाते हैं । ऐसा न हो इसलिए साधक को हमेशा याद रखना चाहिए कि चाहे कितना भी मान मिल जाए लेकिन मिलता तो है इस नश्वर शरीर को ही और शरीर को अंत में जलाना ही है तो फिर उसके लिए क्यों परेशान होना ?

शुद्ध प्रेम तो उसे कहते हैं जो भगवान और गुरु से किया जाता है । उनमें दृढ़ प्रीति करनेवाला साधक आध्यात्मिकता के शिखर पर शीघ्र ही पहुँच जाता है। जितना अधिक प्रेम, उतना अधिक समर्पण और जितना अधिक समर्पण, उतना ही अधिक लाभ।

संतों ने ठीक ही कहा है :

मान पुड़ी है जहर की, खाये सो मर जाये ।
चाह उसीकी राखता, वह भी अति दुःख पाये ॥

एक बार बुद्ध के चरणों में एक अपरिचित युवक आ गिरा और दंडवत् प्रणाम करने लगा।

बुद्ध : ''अरे अरे, यह क्या कर रहे हो ? तुम

क्या चाहते हो ? मैं तो तुम्हें जानता तक नहीं।''

युवक : ''भन्ते ! खड़े रहकर तो बहुत देख चुका । आज तक अपने पैरों पर खड़ा होता रहा इसलिए अहंकार भी साथ में खड़ा ही रहा और सिवाय दुःख के कुछ नहीं मिला । अतः आज मैं आपके श्रीचरणों में लेटकर विश्रांति पाना चाहता हूँ।''

अपने भिक्षुकों की ओर देखकर बुद्ध बोले :

''तुम सब रोज मुझे गुरु मानकर प्रणाम करते हो लेकिन कोई अपना अहं न मिटा पाया और यह अनजान युवक आज पहली बार में ही एक संत-फकीर के नाते मेरे सामने झुकते-झुकते अपने अहं को मिटाते हुए, बाहर की आकृति का अवलंबन लेते हुए अंदर निराकार की शांति में डूब रहा है।''

इस घटना का यही आशय समझना है कि सच्चे संतों की शरण में जाकर साधक को अपना अहंकार विसर्जित कर देना चाहिए। ऐसा नहीं कि रास्ते जाते जहाँ-तहाँ आप लम्बे लेट जाएँ।

अमानमत्सरो दक्षो...

साधक को चाहिए कि वह अपने कार्य में दक्ष हो। अपना कार्य क्या है ? अपना कार्य है कि प्रकृति के गुण-दोष से बचकर आत्मा में जगना और इस कार्य में दक्ष रहना अर्थात् डटे रहना, लगे रहना। उस निमित्त जो भी सेवाकार्य करना पड़े उसमें दक्ष रहो। लापरवाही, उपेक्षा या बेवकूफी से कार्य में विफल नहीं होना चाहिए, दक्ष रहना चाहिए। जैसे, ग्राहक कितना भी दाम कम करवाने को कहे, फिर भी लोभी व्यापारी दलील करते हुए अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाने की कोशिश करता है, ऐसे ही ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में अपने चित्त को चलित करने के लिए कितनी ही प्रतिकूल परिस्थितियाँ आ जाएँ, फिर भी साधक को अपने परम लक्ष्य में डटे रहना चाहिए। सुख आये या दुःख, मान हो या अपमान, सबको देखते जाओ... मन के विचारों को, प्राणों की गति को देखने की कला में दक्ष हो जाओ।

नौकरी कर रहे हो तो उसमें पूरे उत्साह से लग जाओ, विद्यार्थी हो तो उमंग के साथ पढ़ो, लेकिन व्यावहारिक दक्षता के साथ-साथ आध्यात्मिक दक्षता भी जीवन में होनी चाहिए। साधक को सदैव आत्मज्ञान की ओर आगे बढ़ना चाहिए। कार्यों को इतना नहीं बढ़ाना चाहिए कि आत्मचिंतन का समय ही न मिले। संबंधों को इतना नहीं बढ़ाना चाहिए कि, जिससे संबंध जोड़े जाते हैं उसीका पता न चले।

एकनाथजी महाराज ने कहा है कि रात्रि के पहले प्रहर और आखिरी प्रहर में आत्मचिंतन करना चाहिए। कार्य के प्रारंभ में और अंत में आत्मविचार करना चाहिए। दक्ष

कार्यों को इतना नहीं बढ़ाना चाहिए कि आत्मचिंतन का समय ही न मिले। संबंधों को इतना नहीं बढ़ाना चाहिए कि, जिससे संबंध जोड़े जाते हैं उसीका पता न चले। रात्रि के पहले प्रहर और आखिरी प्रहर में आत्मचिंतन करना चाहिए। कार्य के प्रारंभ में और अंत में आत्मविचार करना चाहिए।

''तुम सब रोज मुझे गुरु मानकर प्रणाम करते हो लेकिन कोई अपना अहं न मिटा पाया और यह अनजान युवक आज पहली बार में ही मेरे सामने झुकते-झुकते अपने अहं को मिटाते हुए अंदर निराकार की शांति में डूब रहा है।''

वह है जो अपने जीवन में इच्छा उठे और पूरी हो जाय तब अपने आपसे ही प्रश्न करे कि : 'आखिर इच्छापूर्ति से क्या मिलता है ?' ऐसा करने से इच्छानिवृत्ति के उच्च सिंहासन पर आसीन होनेवाले दक्ष महापुरुष की नाईं निर्वासनिक नारायण में प्रतिष्ठित हो जायेगा।

अगला सद्‌गुण है ममतारहित होना। देह में अहंता और देह के संबंधियों में ममता होती है। जो मनुष्य अपने संबंधों के पीछे जितनी ममता रखता है, उतना ही उसके परिवारवाले उसको दुःख के दिन दिखा देते हैं। अतः साधक को देह एवं देह के संबंधों से ममतारहित बनना चाहिए।

आगे बात आती है- गुरु में दृढ़ प्रीति करने की। मनुष्य क्या करता है ? वास्तविक प्रेमरस को समझे बिना संसार के नश्वर पदार्थों में प्रेम का रस चखने जाता है और अंत में हताशा, निराशा एवं पश्चाताप की खाई में गिर पड़ता है। इतने से भी छुटकारा नहीं मिलता। चौरासी लाख जन्मों की यातनाएँ सहने के लिए उसे बाध्य होना पड़ता है। शुद्ध प्रेम तो उसे कहते हैं जो भगवान और गुरु से किया जाता है। उनमें दृढ़ प्रीति करनेवाला साधक आध्यात्मिकता के शिखर पर शीघ्र ही पहुँच जाता है। जितना अधिक प्रेम, उतना अधिक समर्पण और जितना अधिक समर्पण, उतना ही अधिक लाभ।

गुणों से सुसज्जित सत्‌शिष्य सद्‌गुरु के थोड़े-से उपदेश मात्र से आत्म-साक्षात्कार करके जीवन्मुक्त पद में आरूढ़ हो जाता है। साधक को ब्रह्मवेत्ता महापुरुष का सान्निध्य मिल भी जाये, लेकिन उसमें यदि नव गुणों का अभाव है तो उसे ऐहिक लाभ जरूर होता है, किन्तु आत्म-साक्षात्कार के लाभ से वह वंचित रह जाता है।

कबीरजी ने कहा है :

प्रेम न खेतों उपजे, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा चहो प्रजा चहो, शीश दिये ले जाय॥

शरीर की आसक्ति और अहंता जितनी मिटती जाती है, उतना ही स्वभाव प्रेमपूर्ण बनता जाता है। इसीलिए छोटा-सा बच्चा, जो निर्दोष होता है, हमें बहुत प्यारा लगता है क्योंकि उसमें देहासक्ति नहीं होती। अतः शरीर की अहंता एवं आसक्ति छोड़कर गुरु में, प्रभु में दृढ़ प्रीति करने से अंतःकरण शुद्ध होता है। 'विचारसागर' ग्रन्थ में भी आता है कि : ''गुरु में दृढ़ प्रीति करने से मन का मैल तो दूर होता ही है, साथ ही उनका उपदेश भी शीघ्र असर करने लगता है, जिससे मनुष्य की अविद्या और अज्ञान भी शीघ्र नष्ट हो जाता है।''

इस प्रकार गुरु में जितनी-जितनी निष्ठा बढ़ती जाती है, जितना-जितना सत्संग पचता जाता है उतना-उतना ही चित्त निर्मल व निश्चिंत होता जाता है।

इस प्रकार परमार्थ पाने की जिज्ञासा बढ़ती जाती है, जीवन में पवित्रता, सात्त्विकता, सच्चाई आदि गुण प्रगट होते जाते हैं और साधक ईर्ष्यारहित हो जाता है।

जिस साधक का जीवन सत्य से युक्त, मान, मत्सर, ममता एवं ईर्ष्या से रहित होता है, जो गुरु में दृढ़ प्रीतिवाला, कार्य में दक्ष एवं निश्चलचित्त होता है, परमार्थ का जिज्ञासु होता है - ऐसा नव गुणों से सुसज्ज साधक शीघ्र ही गुरुकृपा का अधिकारी होकर जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनंद का अनुभव कर लेता है अर्थात् परमात्म-साक्षात्कार कर लेता है।

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

'श्रीमहाभारत' में आता है :

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत् ।
न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः ॥
गुरुः प्लावयिता तस्य ज्ञानं प्लव इहोत्यते ।
विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं त्यजेत् ॥

'जैसे ज्ञान-विज्ञान के बिना मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता, उसी प्रकार सद्गुरु से संबंध हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु इस संसारसागर से पार उतारनेवाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौका के समान बताया गया है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है। फिर उसे नौका और नाविक दोनों की ही अपेक्षा नहीं रहती।'

(महा० शांति० : ३२६.२२,२३)

छल-कपट, धोखा-धड़ी, पलायनवादिता आदि आसुरी वृत्तियों से बचाकर जो हमें सच्चाई, पवित्रता एवं तत्परता की ओर ले जायें, ऐसे सद्गुरु मिलना- यह मानव जन्म की सबसे बड़ी उपलब्धि है। लेकिन ऐसे सद्गुरु मिल जायें, फिर भी हम सुधरें नहीं तो मनुष्य जन्म का दुर्भाग्य भी तो पूरा है। अतः गुरुद्वार पर कैसे रहना चाहिए- यह सभी को ज्ञात होना चाहिए।

शिष्य को चाहिए कि गुरु-आश्रम में वह अपना सारा समय सेवा, साधना, जप-ध्यान आदि में ही लगाये और अपनी गलती हो तो गलती को गलती मानकर उसका प्रायश्चित करे।

हमारी जो भी गलत आदत है उसको सामने रखकर सुबह संकल्प करो कि : 'अब मैं ऐसा नहीं करूँगा।' फिर भी गलत आदत नहीं निकलती है तो सद्गुरु से, भगवान से प्रार्थना करो, गुरुभाइयों से कहो कि : 'मुझमें यह गलती है।' अपनी गलती को चिल्लाकर भगाओ तो भागेगी, नहीं तो गलती को गलती के रूप में भी नहीं स्वीकार कर सकोगे।

मनुष्य के स्वभाव में परिवर्तन लाना बड़ा विकट है। कोई भी व्यक्ति अपनी प्रकृति का बदलाव सरलता से स्वीकार नहीं करता है। जो आदतें पड़ गयी हैं, जो पुराने संस्कार पड़ गये हैं, उनको वह छोड़ना नहीं चाहता। इसीलिए पत्थर को भगवान बनाना बड़ा आसान है लेकिन झूठ-कपट करनेवाले इस मिट्टी के पुतले को ब्रह्म बनाना बड़ा कठिन है। किसी मठ-मंदिर या संस्था को चलाना भी सरल है लेकिन बेईमानों-कपटियों को ब्रह्मसुख देना असंभव है क्योंकि वे अपनी गलत आदतों को छोड़ने के लिए राजी नहीं होते। दुर्गुणों का त्याग किये बिना सब ऐच्छिक साधन एवं सुख गुरु से प्राप्त कर लेना चाहते हैं। वे तो मानो, डामर की सड़क पर खेती करना

चाहते हैं। यदि ब्रह्मसुख पाना है, आत्मसुख पाना है तो साधक को झूठ-कपट, बेईमानी, अपने बचाव की आदत आदि दुर्गुणों का त्याग करना ही पड़ेगा।

साधक को चाहिए कि वह जप-ध्यान, सेवा, साधना तत्परता से करता रहे और नियम में निष्ठा रखे। ऐसा करने से पुरानी गंदी आदतें दूर होंगी एवं मनमुखता मिटेगी। लेकिन यदि जप-ध्यान से, सेवा से वह कतरायेगा, नियम में नहीं रहेगा तो भ्रष्ट हो जायेगा, पतित हो जायेगा।

भगवान के प्यारे संत-सद्गुरु एवं शास्त्र ही हमको परमात्मा के रास्ते पर चढ़ाते हैं, बाकी तो सब गिरानेवाले ही मिलते हैं। बुद्धिमान वही है जो संसाररूपी ताप से बचने के लिए संतों का संग करता है, सत्शास्त्रों का विचार करता है एवं आत्मविद्या को पाकर संसार में तपानेवाली अविद्या को मिटा देता है।

साधारण जगह पर किये गये किसी भी कार्य की अपेक्षा तीर्थ व गुरुद्वार पर किये गये कार्य का फल अनंतगुना होता है। साधारण जगह पर किये हुए जप-तप की अपेक्षा तीर्थ व गुरुद्वार पर किया गया जप-तप अनंतगुना फल देता है। इसी प्रकार साधारण जगह पर किये गये झूठ-कपट, बेईमानी की अपेक्षा तीर्थ व गुरुद्वार पर किये गये झूठ-कपट एवं बेईमानी से ज्यादा पाप लगता है।

मन में जैसा आता है, वैसा ही जो करने लग जाता है उसका पतन हो जाता है। कोई भी काम करो तब सोचो कि गुरु देखेंगे तो उनको कैसा लगेगा ? उनके मन में क्या होगा ?

ईश्वर ने मनुष्य जन्म दिया है, स्वास्थ्य दिया है, मार्गदर्शक सद्गुरु मिले हैं, खाने-पीने-रहने की सुविधा मिली है, फिर भी जो अपनी बुरी आदतें निकालकर अपना कल्याण न करे, अपनी उन्नति न करे तो किसका दोष ?

आसुरी वृत्तियों से बचाकर जो हमें सच्चाई, पवित्रता एवं तत्परता की ओर ले जायें, ऐसे सद्गुरु मिलना- यह मानव जन्म की सबसे बड़ी उपलब्धि है। ऐसे सद्गुरु मिल जायें, फिर भी हम सुधरें नहीं तो मनुष्य जन्म का दुर्भाग्य भी तो पूरा है।

कई लोग ऐसे होते हैं जो शत्रु को भी मित्र बना लेते हैं और कई ऐसे होते हैं कि मित्र को भी शत्रु बना लेते हैं। कई ऐसे होते हैं कि असंत के आगे भी संत जैसा व्यवहार करते हैं तो असंत के अंदर भी छुपा हुआ संतत्व जग जाता है और कई मूर्ख ऐसे होते हैं कि संत के आगे भी ऐसा व्यवहार करते हैं कि संत को भी असंत जैसा नाटक करना पड़ता है। उनको क्रोध होता नहीं है, फिर भी क्रोध लाना पड़ता है। अतः अपना व्यवहार ऐसा होना चाहिए कि जहाँ से न मिलता हो वहाँ से भी मिलना शुरू हो जाये। ऐसा व्यवहार न करो कि जहाँ से छलकता हो, वहाँ से भी छलकना बंद हो जाये। इन्सान अपने कर्मों से ही ईश्वर और सद्गुरु के करीब या उनसे दूर होता है। संत कभी किसीको अपने से दूर नहीं करते।

करणी आपो आपनी
के नेड़े के दूर।

आश्रम में आते हो तो ध्यान करनेवाले व्यक्ति को मददरूप हो जाओ। यदि मददरूप नहीं हो सकते हो तो कम-से-कम उसे विघ्न मत डालो। यहाँ कई ऐसे नये-नये अटपटे लोग आ जाते हैं जो कि

हम ध्यान में होते हैं, साधक लोग शांति से बैठे होते हैं फिर भी जोर से बड़बड़ाने लगते हैं कि : 'आश्रम अच्छा है... महाराज कहाँ हैं ?' ऐसा नहीं करना चाहिए । इतना बोलो, ऐसा बोलो और इसीलिए बोलो कि जिससे तुम्हारे भी पाप नष्ट हों, तुम्हारा भी मन शीतल हो, शांत हो और सुननेवाले का मन भी गहरी शांति में खो जाये । आश्रम की शांति बनी रहे ।

झूठ-कपट करनेवाले इस मिट्टी के पुतले को ब्रह्म बनाना बड़ा कठिन है । किसी मठ-मंदिर या संस्था को चलाना भी सरल है लेकिन बेईमानों-कपटियों को ब्रह्मसुख देना असंभव है क्योंकि वे अपनी गलत आदतों को छोड़ने के लिए राजी नहीं होते ।

इसी प्रकार आश्रम की स्वच्छता बनाये रखने में भी सावधान रहना चाहिए । ऐसा नहीं कि फल खाकर छिलके बगीचे में ही छोड़ दिये... आश्रम में कोई नौकर नहीं है । यहाँ साधक लोग रहते हैं । तुम जूठा पदार्थ छोड़कर जाओगे और साधक बुहारी करके उसे कचरापेटी में डालेंगे तो तुम्हारे पाप बढ़ेंगे और पुण्य नष्ट होंगे । हो सके तो तुम भी आश्रम में तिनका उठाकर किनारे लगाओ । हो सके तो जूठन उठाकर फेंक दो । तुम जूठा छोड़कर मत जाओ । पहले का काफी 'जूठा' तुम्हारे सिर पर पड़ा है, और कब तक ढोते रहोगे ?

आश्रम में संत-दर्शन की भी कोई विधि होती है । जहाँ से हवा आती है उस तरफ संत हों, संत की हवा का हमें स्पर्श हो- ऐसी जगह पर खड़े रहना चाहिए । हमारा श्वास छूकर, हमारी हवा छूकर संत को लगे- यह ठीक नहीं है । नहीं तो हमारी खिन्नता और मूढ़ता वहाँ जाती हैं और वहाँ से जो छलकता है, उसमें १९-२० हो जाता है । फिर तुम्हारे विचार और तुम्हारी गंदगी का कुछ मिश्रण ही तुम्हें मिल जाता है । इसीलिए कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग या तामसी लोग आ जाते हैं और ऐसे ढंग से खड़े होते हैं तो उनको प्रेम की जगह पर डाँट मिल जाती है क्योंकि उनके पास जो है वे ही आंदोलन मिश्रित हो जाते हैं ।

संत यदि ध्यान में हों, किसी काम में हों या किसीसे बातें करते हों तो उनकी छाती पर खड़े नहीं रहना चाहिए । संत जितना धीरे बोलेंगे उतना सारगर्भित होगा । जितनी भीड़ होगी उतना जोर से बोलना पड़ेगा । अतः ऐसे समय पर दूर खड़े रहो । अवसर पाकर ही बात करो ।

साधारण जगह पर किये गये किसी भी कार्य की अपेक्षा तीर्थ व गुरुद्वार पर किये गये कार्य का फल अनंतगुना होता है । तीर्थ व गुरुद्वार पर किया गया जप-तप अनंतगुना फल देता है । इसी प्रकार तीर्थ व गुरुद्वार पर किये गये झूठ-कपट एवं बेईमानी से ज्यादा पाप लगता है ।

इस प्रकार गुरुद्वार पर रहने की, गुरुदर्शन करने की युक्ति जानकर, उनका अमल करके तुम बहुत लाभ उठा सकते हो ।

एक भगवान, भगवान के प्यारे संत-सद्गुरु एवं शास्त्र ही हमको परमात्मा के रास्ते पर चढ़ाते हैं, बाकी तो सब गिरानेवाले ही मिलते हैं । बुद्धिमान वही है जो संसाररूपी ताप से बचने के लिए संतों का संग करता है, सत्शास्त्रों का विचार करता है एवं आत्मविद्या को पाकर संसार में तपानेवाली अविद्या को मिटा देता है ।

❀

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरंजनम्।
नादबिन्दुकलातीतं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

'जो चैतन्य, शाश्वत्, शांत, आकाश से परे हैं, इन्द्रियों से परे हैं, जो नाद, बिंदु और कला से परे हैं, उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम है !'

यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन विभाति यत्।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

'जिसके अस्तित्व से संसार का अस्तित्व है, जिसके प्रकाश से जगत प्रकाशित होता है, जिसके आनंद से सब आनंदित होते हैं उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम है !'

कर्मणा मनसा वाचा सर्वदाऽऽराधयेद् गुरुम्।
दीर्घदण्डनमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ ॥

'गुरुदेव के समक्ष निःसंकोच होकर लंबा दण्डवत् प्रणाम करके मन, कर्म तथा वचन से हमेशा गुरुदेव की आराधना करनी चाहिए।'

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं
ज्ञानस्वरूपं निजभावयुक्तम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं
श्रीसद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥

'जो आनंदस्वरूप हैं, जो आनंदमय करनेवाले हैं, जो सदैव प्रसन्न हैं, जो ज्ञानस्वरूप हैं, जो निज भाव से युक्त हैं, जो योगियों के आराध्यदेव हैं, जो संसाररूपी रोग के वैद्य हैं ऐसे श्रीसद्गुरु को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।'

नित्यशुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम्।
नित्यबोधं चिदानंदं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् ॥

'जो नित्यशुद्ध हैं, जो आभासरहित हैं, जो निराकार हैं, जो इन्द्रियों से परे हैं, जो नित्य ज्ञानस्वरूप हैं, जो चिदानंद हैं ऐसे ब्रह्मस्वरूप श्रीगुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ।'

नमः शिवाय गुरवे सच्चिदानन्दमूर्तये।
निष्प्रपंचाय शान्ताय निरालम्बाय तेजसे ॥

'शिवस्वरूप, सच्चिदानंदस्वरूप, प्रपंचों से रहित, शान्त, निरालम्ब, तेजयुक्त श्रीगुरुदेव को प्रणाम है !'

नमः शान्तात्मने तुभ्यं नमो गुह्यतमाय च।
अचिन्त्यायाप्रमेयाय अनादिनिधनाय च ॥

'हे रहस्यमय, अचिन्तनीय, अपरिमित और आदि-अंत से रहित, शान्त आत्मस्वरूप ! तुझे प्रणाम है !'

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय।
नमस्ते चिते सर्वलोकाश्रयाय ॥
नमोऽद्वैततत्त्वाय मुक्तिप्रदाय।
नमो ब्रह्मणे व्यापिने शाश्वताय ॥

'जगत के कारण सत् तुझे प्रणाम है ! सर्व लोकों के आश्रयस्वरूप चित् तुझे प्रणाम है ! मुक्ति प्रदान करनेवाले अद्वैत तत्त्व तुझे प्रणाम है ! शाश्वत, सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म तुझे प्रणाम है !'

सत्यानन्दस्वरूपाय बोधैकसुखकारिणे।
नमो वेदान्तवेद्याय गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥

'जो सत्य और आनंदस्वरूप हैं, चेतनानंद के साधनस्वरूप हैं, बुद्धि के साक्षी हैं, वेदांत के द्वारा ज्ञेय हैं ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है !'

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

'अज्ञानरूपी अंधकार से अंधे बने हुए की आँखों को ज्ञानरूपी अंजन-शलाका से खोलनेवाले उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम है !'

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

'जो चर और अचर सृष्टि में अखण्ड-मण्डलाकार रूप में व्याप्त हैं, जिन्होंने 'तत्पद' का दर्शन कराया है, उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम है !'

स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं यत्किंचित्सचराचरम् ।
त्वंपदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम : ॥

'जो चर और अचर सृष्टि में स्थावर एवं जंगम सब जीवों में व्याप्त हैं, जिन्होंने 'त्वंपद' का दर्शन कराया है, उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम है !'

चिन्मयं व्यापितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
असित्वं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम : ॥

'जो चिन्मयस्वरूप, तीनों लोकों के चल एवं अचल सब जीवों में व्याप्त है, जिन्होंने 'असिपद' का दर्शन कराया है, उन श्रीगुरुदेव को प्रणाम है !'

(स्कंदपुराण)

"संत की परख उनके बाह्य रूप, वेश-भूषा से नहीं बल्कि उनके अंतःकरण की ब्रह्मनिष्ठा से होती है । अष्टावक्र के शरीर में आठ वक्रताएँ थीं, शुकदेवजी दिगंबर थे, वेदव्यासजी आचार्य थे, वशिष्ठजी गृहस्थ कर्मयोगी थे फिर भी सभी महानुभावों का ज्ञानानुभव एक समान था ।

वास्तव में ब्रह्मज्ञानी संत विश्व के महान् आश्चर्य और मानवमात्र के लिए प्रेरणास्रोत हैं । उनकी परख करना साधारण मानव-बुद्धि के वश की बात नहीं है ।"

– पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

नजरें बदलीं तो...

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

जगत में धनवान् कौन है और गरीब कौन है ? यह प्रश्न राजा भर्तृहरि ने अपने-आपसे ही किया ।

अपने राज्य-वैभव को देखकर वे स्वयं ही सोचने लगे कि : 'मैं धनवान् तो दिखता हूँ किन्तु वास्तव में मैं धनवान् नहीं हूँ...' फिर बाद में उन्होंने लिखा भी है कि : 'दरिद्र वह है जिसे बाहर के सुखों की लालसा ज्यादा है । जिसके चित्त में संतोष है, आत्मसुख है, उसके सामने न कोई दरिद्र है न कोई धनवान् है ।'

'वैराग्य शतक' में भर्तृहरि कहते हैं :

वयमिह परितुष्टा वल्कलस्त्वं दुकूलैः ।
सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः ॥
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला ।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥

'हे राजन् ! यहाँ हम पेड़ की छालों से संतुष्ट हैं और तुम रेशमी वस्त्रों से । हमारे और तुम्हारे संतोष में कोई अन्तर नहीं है । संतोष दोनों का एक समान ही है, परन्तु जिसको धनलिप्सा अधिक है वही पुरुष दरिद्र है, क्योंकि मन के संतुष्ट होने पर न कोई धनी है, न कोई दरिद्र है ।' **(वैराग्य शतक : ४५)**

मनु महाराज कहते हैं : 'तब तक सत्कर्म किये जाओ, जब तक तुम्हें अपने कृत्यों से आत्मसंतोष न मिले।'

न राजा सुखी है, न तपस्वी और न ही विद्वान्। अपने जीवन और कार्यों से जो आत्मसंतोष पाता है, वही वास्तव में सुखी है।

शबरी भीलनी... अकेले ही, आश्रम में साफ-सफाई रखनेवाली, बाह्य रूप से अभाव में दिखनेवाली होते हुए भी आत्मसंतोष का अनुभव करती है और दास-दासियों से घिरी हुई रानियाँ अपने को परेशान महसूस करती हैं। राजा जनक राज्य-वैभव के बीच होते हुए भी अपने को सुखी अनुभव करते हैं और रावण राज्य-वैभव के बीच भी अपने को परेशान पाता है।

अपने शब्द की चोट से सद्गुरुदेव हमारे भ्रम को हर लेते हैं। हमें वह नजर दे देते हैं जिससे हम नश्वर जगत की प्रीति को छोड़कर शाश्वत् परमात्मा की राह पर चल सकें और शाश्वत् तत्त्व को जानकर संतों के इस अनुभव को अपना बना सकें।

दुनिया के लोग या तो संग्रह के लिए बोलते हैं या त्याग के लिए, किन्तु इससे काम पूरा नहीं होता है। कोई भोग का रास्ता पकड़ता है तो कोई त्याग का, लेकिन ब्रह्मवेत्ताओं का, बुद्ध पुरुषों का एवं वेदान्त का यह संदेश है कि :

भोग-त्याग जाके नहीं सो विद्वान निरोग।

जीवन में न केवल त्याग हो और न केवल भोग हो, वरन् ठीक समझ हो, ठीक दृष्टि हो तो काम बन जाता है। न अधिक त्यागी बनना है न अधिक भोगी बनना है वरन् शरीर को स्वस्थ, मन को प्रसन्न और बुद्धि को समता के सिंहासन पर बैठा दो तो आसानी से काम हो जायेगा।

अर्थी पर एक शव जा रहा था। बुद्ध उस शव को देखकर खूब हँसे। तब सुजाता ने पूछा :

''भन्ते ! आप ही के श्रीमुख से सुना है कि किसी बूढ़े, बीमार और मृतक को देखकर ही आपका विवेक जगा था कि 'आखिर यह शरीर भी इसी तरह जलाने के लिए ले जाया जायेगा, मौत अवश्यंभावी है।' ऐसे ही किसी शव को देखकर आपका विवेक-वैराग्य जगा था और अभी इस शव को देखकर आप खिलखिलाकर हँस रहे हैं ?''

बुद्ध ने कहा : ''हाँ, सुजाता ! उस समय लगता था कि 'वह मर गया... मैं भी मर जाऊँगा...' लेकिन अब ठीक दृष्टि मिल गयी है कि जो मरता है वह मैं नहीं हूँ और जहाँ मैं हूँ वहाँ मौत नहीं आ सकती।''

नजरें बदलीं तो नजारे बदल गये।
किश्ती ने बदला रुख तो किनारे बदल गये ॥

जो जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि की ओर ले जानेवाले किनारे थे, वे अब बुद्धिरूपी किश्ती के रुख बदलने के कारण मुक्ति-शांति-आनंद-माधुर्य के रूप में बदल गये हैं।

''महाराज ! मेरे त्याग-तपस्या का फल यही है कि आज मुझे आप जैसे ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु स्वयं आकर मिल गये हैं... मुझे सही नजर देनेवाले गुरुवर मिल गये हैं।''

रामतीर्थ कहा करते थे :

आठवें अर्स तेरा नूर चमकदा,
तू उससे भी ऊँचा हो, फकीरा !
आपे अल्ला हो।
छोड़ अँगड़ाई सुन राम दुहाई,
लिक लिक कैद न हो, फकीरा !
आपे अल्ला हो।

'हे राम ! तू अपने अल्लाही स्वरूप को जान। तू

अपने को एक शरीर के संकीर्ण 'मैं' में मत कैद कर, वरन् सारे दिलों से जो 'मैं' उठता है, वही तेरा असली 'मैं' है। उसे जान ले और आप ही अल्लाह हो जा।'

यज्ञ-याग में कुशल ऐसे ऋषिवरों ने सूतजी से कहा :

''कलियुग का भाई अधर्म जहाँ-तहाँ अपने पैर पसारकर बैठ गया है। लोग स्वार्थी, अल्प मति के और कलहप्रिय हो गये हैं, आसुरी भाव का आश्रय लेनेवाले हो गये हैं। तीर्थों में भी अधर्म ने अपने पाँव पसार दिये हैं और मानव पेटपालू पशु की तरह हो गया है। चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है।

आप ज्ञान के पारगामी हैं। हमने कलियुग के दोषों से बचने के लिए हजार दिवसीय यज्ञ का आयोजन किया है किन्तु यज्ञ से वह शांति नहीं मिली, जो आपकी कथा से हमारे चित्त में शांति आयी है।''

कहने का तात्पर्य यह है कि हजारों यज्ञ-यागादि से भी वह शांति, वह आनंद नहीं मिलता, जो आनंद ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के सत्संग व सान्निध्य से कुछ ही समय में मिल जाता है क्योंकि संत हमें ठीक नजर दे देते हैं।

हजारों यज्ञ-यागादि से भी वह शांति, वह आनंद नहीं मिलता, जो आनंद ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के सत्संग व सान्निध्य से कुछ ही समय में मिल जाता है क्योंकि संत हमें ठीक नजर दे देते हैं।

नजरें बदलीं तो नजारे बदल गये।

कुछ उपदेश त्यागपरक होते हैं। कुछ प्रवृत्तियाँ भोगपरक हैं लेकिन वेदान्त और ब्रह्मवेत्ता महापुरुष 'आप क्या हैं ?' इसका उपदेश देते हैं। त्याग एक छोर है तो भोग दूसरा।

जीवन में न केवल त्याग हो और न केवल भोग हो, वरन् ठीक समझ हो, ठीक दृष्टि हो तो काम बन जाता है। शरीर को स्वस्थ, मन को प्रसन्न और बुद्धि को समता के सिंहासन पर बैठा दो तो आसानी से काम हो जायेगा।

मछंदरनाथ किसी नगर में गये तो वहाँ के नगरवासियों से उन्होंने नगर के राजा की बड़ी भारी प्रशंसा सुनी कि : ''नगर के राजा सब कुछ त्याग करके महान् त्यागी साधु बन गये हैं, जंगल में रहते हैं और अपने ही नगर में भिक्षापात्र लेकर आ जाते हैं। अपनी कुटी में जाकर भिक्षा के अन्न को धो डालते हैं। खारा-खट्टा सब छोड़कर सादा भोजन करते हैं। ऐसा साधु तो हमने नहीं देखा।''

मछंदरनाथ ने कहा : ''ठीक है, हम देखेंगे उसे।''

साधु बना वह राजा जब भिक्षा लेकर जंगल की ओर जाने लगा, तब मछंदरनाथ ने उसका पीछा किया और जाते-जाते उसे जरा-सा धक्का मार दिया।

भूतपूर्व राजा : ''महाराज! कुछ समय पूर्व यह धक्का मारते तो परिणाम कुछ और आता, किन्तु अब मैंने अहं का त्याग कर दिया है।''

मछंदरनाथ चुप रहे। थोड़ी दूर आगे जाने पर मछंदरनाथ ने पुनः कोहनी मार दी।

वह बोला : ''महाराज ! मैंने राज्य त्यागा, महल त्यागा, अहं त्यागा तो आपकी एक कोहनी मेरा क्या बिगाड़ सकती है ?''

मछंदरनाथ ने कहा : 'राजन् ! तुमने महल त्यागा, राज्य त्यागा लेकिन जो त्यागने योग्य है, उसे अभी तक नहीं त्यागा। तुम बेवकूफ हो।''

जैसे, राख में छिपी हुई आग राख को फूँकने पर उभर आती है, ऐसे ही त्याग में छुपा हुआ उस

राजा का अहं उभर आया। उसने कहा :

''मैंने बेवकूफी नहीं त्यागी ? महाराज! मुझे बेवकूफ कहते हो ?''

मछंदरनाथ : ''हाँ। 'तुम क्या हो ?' यह तुमको ही पता नहीं। पहले तुम राजा थे, भोगी थे, महल में रहते थे, सोने की थाली में खाते थे। अब अपने को साधु मानते हो, त्यागी मानते हो, झोंपड़ी में रहते हो और ठीकरे में खाते हो। पहले अपने को भोगी मानते थे और अब त्यागी मानते हो किन्तु अभी तक तुमने बेवकूफी को त्यागा नहीं है। बड़े-में-बड़ी बेवकूफी यही है कि तुम अपने-आपको नहीं जानते। जहाँ से 'मैं' उठता है उस असली 'मैं' को नहीं जानते तो बेवकूफ नहीं तो और क्या हो ? जब तक किसी ब्रह्मवेत्ता की शरण में नहीं जाओगे, तब तक इस बेवकूफी का भी अंत नहीं होगा, इस भोग-त्याग का भी अंत नहीं होगा, जन्म-मरण का भी अंत नहीं होगा।''

राजा की थोड़ी बहुत साधना तो थी ही, अतः वह मछंदरनाथ के चरणों में गिर पड़ा और बोला :

''महाराज! मेरे त्याग-तपस्या का फल यही है कि आज मुझे आप जैसे ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु स्वयं आकर मिल गये हैं... मुझे सही नजर देनेवाले गुरुवर मिल गये हैं।''

कबीरजी ने कहा है :

सद्गुरु मेरा शूरमा, करे शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का, हरे भरम की कोट ॥

हमारे जन्म-मरण के चक्र को सदा के लिए समाप्त करने के लिए अपने शब्द की चोट से सद्गुरुदेव हमारे भ्रम को हर लेते हैं। हमें वह नजर दे देते हैं जिससे हम नश्वर जगत की प्रीति को छोड़कर शाश्वत् परमात्मा की राह पर चल सकें और शाश्वत् तत्त्व को जानकर संतों के इस अनुभव को अपना बनाते हुए कह सकें कि :

नजरें बदलीं तो नजारे बदल गये।
किश्ती ने बदला रुख तो किनारे बदल गये ॥
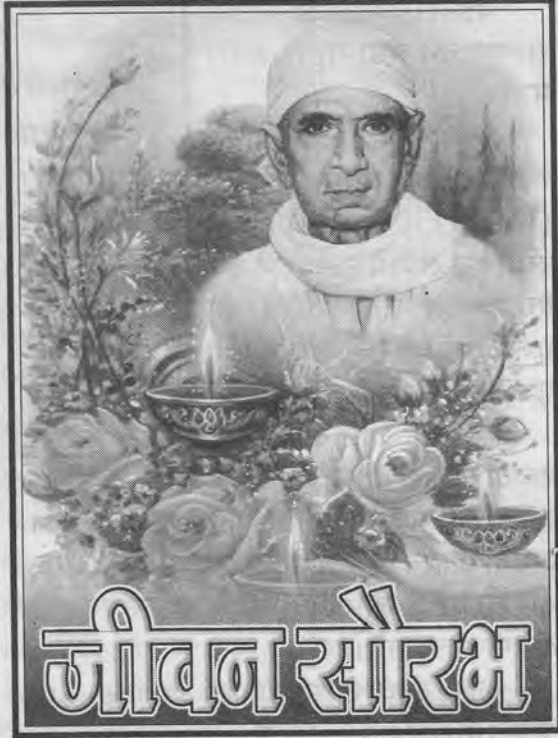
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

''घर को स्वर्ग बनाना हो तो सास को चाहिए कि वह अपनी बहू को अपनी पुत्री जैसा समझे और पुत्री की तरह ही प्रेमयुक्त व्यवहार करे। बहुओं को भी चाहिए कि वे अपनी सास को अपनी माता समझकर प्यार एवं आदर से सेवा करें। ऐसी समझ रखने से घर में सुख एवं शांति रहेगी। फिर भी तुम्हें कहता हूँ कि रोज सुबह उठते समय एवं रात्रि को सोते समय भगवान से प्रार्थना अवश्य करो कि 'हे प्रभु ! हमें सद्बुद्धि दो एवं सबका भला करो।' इसीमें तुम्हारी भलाई है।''

बहनों एवं माताओं पर इस सत्संग का बड़ा गहरा असर पड़ा।

इण्डोनेशिया से पूज्य स्वामीजी दो दिन कोलंबो (सिलोन) पधारे । यहाँ स्वास्थ्य संबंधी मार्गदर्शन देने के पश्चात् जीवन जीने की कला के ऊपर सत्संग करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहा :

''सच्चा वीर कौन है ? सच्चा वीर तो वही है जो अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। जो कायर होकर, वन में कंदमूल खाकर अपना जीवन बिताता है उसे कौन वीर कहेगा ? वीर तो वह है जो अपना भी भला करे एवं दूसरों का भी भला करे।

सच्चा वीर तो वही है जो अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। जो कायर होकर, वन में कंदमूल खाकर अपना जीवन बिताता है उसे कौन वीर कहेगा ? वीर तो वह है जो अपना भी भला करे एवं दूसरों का भी भला करे।

काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार- ये पाँच मनुष्य के घोर शत्रु हैं। उनसे बचने का सरल उपाय है मन को वश करना। किन्तु मन को वश कैसे किया जाये ? इन्द्रियों को वश में करने से मन मुर्दा हो जायेगा। उदाहरणार्थ : तुम स्त्री को देखते हो। मन में स्त्री के प्रति राग होने से बार-बार उसे देखने की चेष्टा करते हो। उस समय तुम एकदम शांत हो जाओ और मन को आदेश दो कि एक क्या, दस स्त्रियों की तरफ देख। उसके बाद आँखें नीची कर लो । परिणाम क्या आयेगा ? मन का कुछ चलेगा ? मन मुर्दा हो जायेगा।

कष्टों के समय धैर्य धारण करने से महानता प्राप्त होती है। दुःख में धैर्य एवं सुख में समता रखने से अंतःकरण में खूब शांति रहती है। सागर की तरह गंभीर बनकर रहना चाहिए। सबके साथ प्यार एवं मधुरता से व्यवहार करना चाहिए । अपने बोलने से मित्र प्रसन्न हुआ तो क्या बड़ी बात है ? जब शत्रु भी तुम्हारे बोलने से प्रसन्न हो जाये तभी वास्तविक महानता कही जाती है। प्रयत्नपूर्वक नम्र एवं अभिमानरहित होकर, अमानी होकर सबके साथ व्यवहार करना चाहिए । ऐसा करने से परमात्मा की कृपा से धीरे-धीरे तुम अपने ब्रह्मस्वभाव को, अपनी अमर आत्मा को जानने में सफल हो जाओगे । ॐ आनंद... ॐ आनंद... ॐ आनंद...''

दुःख में धैर्य एवं सुख में समता रखने से अंतःकरण में खूब शांति रहती है । प्रयत्नपूर्वक नम्र एवं अभिमानरहित होकर, अमानी होकर सबके साथ प्यार एवं मधुरता से व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से धीरे-धीरे तुम अपने ब्रह्मस्वभाव को जानने में सफल हो जाओगे ।

प्रत्येक सत्संग की समाप्ति के बाद पूज्य स्वामीजी श्रोताओं से अपनी मनपसंद सुंदर प्रार्थना करवाते : ''हे भगवान ! हमें सद्बुद्धि दो... शक्ति दो... नीरोगता दो। हम अपना कर्त्तव्य पालें और सुखी रहें ।''

इस प्रकार पूज्य स्वामीजी की विदेशयात्रा के दौरान् वहाँ के श्रद्धालु भाई-बहनों को एक ऐसा अनुपम अवसर मिला जिससे उन्हें यादशक्ति बढ़ाने का, शरीर को स्वस्थ रखने का, मन में माधुर्य, बुद्धि में ओज एवं तेज भर दें ऐसी यौगिक युक्तियाँ, एकाग्रता बढ़ाने के प्रयोगों का ज्ञान मिला एवं सिंह के समान बल भर दे ऐसी स्वामीजी की आध्यात्मिक अनुभूति से संपन्न, ओजमयी वाणी का लाभ मिला। **(क्रमशः)**

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

'संत करें आप समान...'

अपने आत्मकल्याण की चाहना से एक व्यक्ति ने जाकर किन्हीं संत से प्रार्थना की :

''मुझ पर अपनी कृपादृष्टि कीजिए, नाथ !''

उसकी श्रद्धा देखकर गुरु ने उसे मंत्र दे दिया एवं कहा :

''बेटा ! एक वर्ष तक भली-भाँति इस मंत्र का जप करना । बाद में स्नान करके, पवित्र होकर मेरे पास आना ।''

एक वर्ष पूरा हुआ । वह शिष्य स्नानादि करके, पवित्र होकर गुरु के पास जा रहा था, तब गुरु की ही आज्ञा से एक हरिजन महिला ने इस तरह झाड़ू लगायी कि धूल उस शिष्य पर पड़ी । अपने ऊपर धूल पड़ते देख वह शिष्य अत्यंत आगबबूला हो उठा एवं उस महिला को मारने दौड़ा । वह महिला तो भाग गयी ।

वह पुनः गया नहाने के लिए एवं नहा-धोकर, पवित्र होकर गुरु के पास आया । गुरु ने सारी बात तो पहले से जान ही ली थी । उसे देखकर गुरु ने कहा : ''अभी तो तू साँप की तरह काटने दौड़ता है । अभी तेरे अंदर मंत्रजप का रस प्रगट नहीं हुआ । जा, फिर से एक वर्ष तक मंत्रजाप कर । फिर मेरे पास आना ।''

एक वर्ष बाद पुनः जब वह नहा-धोकर, पवित्र होकर आ रहा था तब उस महिला ने धूल तो क्या उड़ायी, बल्कि उसके पैर से ही झाड़ू छुआ दी । झाड़ू छू जाने पर वह भड़क उठा, किन्तु इस बार मारने न दौड़ा । फिर से नहा-धोकर गुरुचरणों में उपस्थित हुआ ।

गुरु ने कहा : ''बेटा ! अब तू साँप की तरह काटने तो नहीं दौड़ता लेकिन फुफकारता तो है । अभी-भी तेरी वैर-वृत्ति गयी नहीं है । जा, पुनः एक वर्ष तक जप करके, पवित्र होकर आना ।''

तीसरा वर्ष पूरा हुआ । शिष्य नहा-धोकर गुरु के पास आ रहा था । इस बार गुरु के संकेत के अनुसार हरिजन महिला ने कचरे का टोकरा ही उस पर उँडेल दिया । इस बार पूरा कचरा उँडेल देने पर भी वह न मारने दौड़ा, न क्रोधित हुआ क्योंकि इस बार जप करते-करते वह जप के अर्थ में तल्लीन हुआ था । उसके चित्त में शांति एवं तत्त्वज्ञान की कुछ झलकें आ चुकी थीं, वह निदिध्यासन की अवस्था में पहुँच गया था । वह बोला :

''हे माता ! तुझे परिश्रम हुआ होगा । मुझ देहाभिमानी के देह के अभिमान को तोड़ने के लिए माता ! तू हर बार साहस करके आयी है । मेरे भीतर के कचरे को निकालने के लिए तूने बहुत परिश्रम किया । पहले यह बात मुझे समझ में न

'जब सर्वत्र वही है, सबमें वही है तो चाह किसकी करूँ और चाह भी कौन करे ?' गुरु की करुणा-कृपा बरस ही रही थी । गुरुकृपा एवं इस प्रकार के चिंतन से धीरे-धीरे वह खोता गया... खोते-खोते वह ऐसा खो गया कि वह शिष्य जिसको खोजता था वही हो गया ।

आती थी किन्तु इस बार गुरुकृपा से समझ में आ रही है कि आदमी जब भीतर से गंदा होता है, तब ही बाहर की गंदगी उसे भड़का देती है। नहीं तो, देखा जाये तो इस कचरे में भी तत्त्वरूप से तो वह परमात्मा ही है।''

यह कहकर वह पुनः स्नान करके गुरु के पास गया। ज्यों-ही वह गुरु को प्रणाम करने गया, त्यों-ही गुरु ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगा लिया एवं कहा : ''बेटा ! क्या चाहिए ?''

शिष्य सोचने लगा कि : 'जब सर्वत्र वही है, सबमें वही है तो चाह किसकी करूँ और चाह भी कौन करे ?'

गुरु की करुणा-कृपा बरस ही रही थी। गुरुकृपा एवं इस प्रकार के चिंतन से धीरे-धीरे वह शिष्य खोता गया... खोता गया... खोते-खोते वह ऐसा खो गया कि वह जिसको खोजता था वही हो गया। ठीक ही कहा है :

पारस में अरु संत में, बहुत अंतरो जान।
वो लोहा सोना करे, संत करें आप समान॥

❀

नेहत्याग और ध्येयत्याग

वशिष्ठजी महाराज कहते हैं :

''हे रामजी ! न मैं देह हूँ, न मैं किन्नर हूँ, न मैं देव हूँ, न मैं दानव हूँ, न मैं मनुष्य हूँ, न मैं वशिष्ठ हूँ, न मैं क्षत्रिय हूँ, न मैं ब्राह्मण हूँ। मैं चिन्मयवपु हूँ। मेरी कोई इच्छा नहीं है।''

यहाँ शंका उठ सकती है। वशिष्ठजी कहते हैं कि 'मेरी कोई इच्छा नहीं है' तो शिष्य का भला करने की इच्छा तो होगी, प्रवचन करने की इच्छा तो होगी, लोगों का कल्याण हो यह इच्छा तो होगी... तभी तो प्रवृत्ति होगी। बिना इच्छा तो नींद में करवट भी नहीं ले सकते। बोलने की भी इच्छा हो तभी तो बोला जा सकता है।

वशिष्ठजी कहते हैं : ''देखो, समझ लो बात को। इच्छा के बारे में दो बातें हैं- एक होता है नेहत्याग और दूसरा होता है ध्येयत्याग।

ज्ञानवान् पुरुष की इच्छा में नेहत्याग होता है। इच्छा में उनका नेह यानी स्नेह नहीं होता, इच्छा में उनकी पकड़ नहीं होती, इच्छा में उनका आग्रह नहीं होता।

जैसे, रस्सी दो प्रकार की होती है : एक होती है कच्ची रस्सी जो बाँधने के काम आती है और दूसरी होती है जली हुई रस्सी जो दिखती तो रस्सी है लेकिन बाँधने के काम नहीं आती। इसी प्रकार ज्ञानवानों की इच्छा भी जली हुई रस्सी की भाँति उन्हें बाँधती नहीं है।

बीज भी दो प्रकार के होते हैं : कच्चे बीज और सेके हुए बीज। दिखते तो दोनों एक-से हैं लेकिन सेके हुए, भुने हुए बीज फिर बोने के काम नहीं आते। ऐसे ही ज्ञानी की इच्छा भी ज्ञानाग्नि से भुनी हुई होती है। **ज्ञानाग्निदग्धकर्माणि...** वह इच्छा पुनः कर्मबंधन का कारण नहीं होती।

ज्ञानी के कर्म स्वाभाविक होते हैं। खाना मिला तो खा लिया... कहीं जाना हुआ तो चल दिये... लेकिन उनको सुखभोग की कोई वासना नहीं होती जबकि अज्ञानी की इच्छा होती है कच्चे बीज के समान, जो अन्य इच्छाओं को उत्पन्न करने का कारण बनती है।

... तो इच्छात्याग में दो प्रकार होते हैं : एक नेहत्याग और दूसरा ध्येयत्याग। इच्छा में ज्ञानी महापुरुषों का नेह नहीं होता और ज्ञानी का शरीर जब शांत हो जाता है तब इच्छा का ध्येय भी नहीं होता। ज्ञानी का शरीर जब तक होता है तब तक उनका चित्त भुने हुए बीज की तरह होता है। जब ज्ञानी का शरीर शांत हो जाता है तब वह भुना हुआ बीज अंकुरित नहीं होता यानी ज्ञानी का पुनर्जन्म नहीं होता। ❀

भीतर की आँख

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

निद्रा में से दो मिनट के लिए भी बाहर की आँख खुल जाती है तो जगत का दीदार हो जाता है। ठीक वैसे ही दो पल के लिए भीतर की आँख खुल जाये तो जगदीश्वर का दीदार हो जाता है।

कितनी सरल और सहज युक्ति है मुक्ति पाने की ! दो मिनट तो क्या, दो पल के लिए भी यदि भीतर की आँख खुल जाये तो जगदीश्वर का दीदार हो जाता है अर्थात् जीव ब्रह्म हो जाता है। जब जीव और ब्रह्म की अभिन्नता प्रगट हो जाती है, तब संसार के सारे दुःख, रोग, भय और चिन्ताएँ स्वतः ही गायब हो जाती हैं। किन्तु बाहर की आँख खुलने से तमाम चिन्ताएँ, परेशानियाँ, रोग, शोक, भय और दुःख ज्यों-के-त्यों हाजिर मिलते हैं।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि 'आँख खुलने का क्या मतलब है ?' बाहर की आँख अर्थात् वे नेत्र, जिनके द्वारा आप इस सारे संसार को देखते हो, जिनसे अपने-पराये का निर्णय करते हो, जिनसे प्रिय वस्तु को देखकर हर्षित एवं अप्रिय वस्तु को देखकर क्षुभित हो उठते हो। जिन नेत्रों के द्वारा आप अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं को देखते हो, वे हैं आपके बाहर के नेत्र। ये बाहर की आँखें जब खुलती हैं तब नश्वर जगत के दीदार होते हैं। किन्तु जब भीतर की आँख खुलती है, ज्ञान की, विवेक की आँख खुलती है तब परमात्मा के दर्शन होते हैं।

जब आप बाहर की आँखों से कुछ देखते हो तब उसके भोक्ता बनने की, उसका उपयोग करने की इच्छा मन में उठ सकती है। किन्तु मन के चँगुल में फँसने के पूर्व यदि विवेकपूर्वक उसके अच्छे-बुरे प्रभावों का विचार करके अपनी व्यर्थ की इच्छाओं पर संयम रखकर ज्ञान का आदर करते हुए स्वयं को भोक्ता बनने से बचा लेते हो तो समझो, आपकी भीतर की आँख खुली हुई है। भीतर की विवेकरूपी आँख खुली रहने पर मानव स्वयं तो विषय-विकारों में गिरने से बच ही जाता है, औरों को भी बचाने के काबिल हो जाता है। विवेकरूपी आँख इन्सान को कभी भी पथभ्रष्ट नहीं होने देती।

> *जो आपके दिल की धड़कनें चलाता है, आँखों को निहारने की, कानों को सुनने की, नासिका को सूँघने की, जिह्वा को चखने की, त्वचा को स्पर्श करने की, मन को संकल्प-विकल्प करने की, बुद्धि को निर्णय करने की सत्ता देता है उसी सत्ता के साथ अपने एकत्व का अनुभव करने का नाम ही है- भीतर की आँख खोलना।*

मान लो, आप स्वप्न देख रहे हो और स्वप्न में आप पर हजार-हजार जुल्म ढाए जा रहे हों। आपने कभी सोचा भी न हो, ऐसे अत्याचार हो रहे हों। आपके टुकड़े-टुकड़े करने की तैयारी हो चुकी हो। किन्तु आपके सारे वफादार मित्र, सगे-संबंधी, पुत्र-परिवार, रूपये-पैसे, जमीन-जायदाद आदि कोई भी आपको बचाने में सक्षम

नहीं हों। इस प्रकार साक्षात् मृत्यु आपके सामने खड़ी हो... इतने में आपकी पत्नी आकर एकाएक आपको जगा दे और आपका स्वप्न टूट जाये तो क्या आप पर अत्याचार जारी रहेंगे ? क्या आपकी मृत्यु होगी ? नहीं, बिल्कुल नहीं।

क्यों ? क्योंकि अत्याचार, जुल्म सब सपने में ढाए जा रहे थे। जाग गये तो स्वप्न का अत्याचार कैसे रह सकता है ? जागने पर तो कोई भय, दुःख, पीड़ा नहीं रहती। निद्रा में से दो मिनट के लिए आँख खुलने पर ही सारी मुसीबतें गायब हो जाती हैं, आपको वास्तविकता का पता चल जाता है और आप निर्दुःख एवं निश्चिंत हो जाते हो।

निद्रा में से दो मिनट के लिए भी बाहर की आँख खुल जाती है तो जगत का दीदार हो जाता है। ठीक वैसे ही दो पल के लिए भीतर की आँख खुल जाये तो जगदीश्वर का दीदार हो जाता है। कितनी सरल और सहज युक्ति है मुक्ति पाने की !

जैसे, नींद में से दो मिनट के लिए आपकी आँख खुल जाती है तो आप स्वप्न की मृत्यु से बच जाते हो, स्वप्न के अत्याचार और जुल्मों से बच जाते हो, ऐसे ही यदि भीतर की आँख अर्थात् ज्ञान की आँख खुल जाये तो आप चौरासी लाख योनियों की पीड़ाओं से भी मुक्त हो सकते हो। फिर दुःख-चिन्ताओं का बोझ उठाकर उससे क्यों दब मरते हो ?

नींद टूटने पर स्वप्न का भय चला जाये और आप अपने को निश्चिंत मानने लगो, यह तो बचकानी बातें हैं। ऐसे सपने तो आज तक हजारों-लाखों-करोड़ों लोगों ने देखे होंगे, लेकिन इनमें से कोई भी मृत्यु से नहीं बच सका तो आप क्या बचोगे ? मृत्यु से पार तो वही हो सका है जिसने भीतर की आँख, विवेकरूपी आँख खोलकर अमरत्व का अनुभव कर लिया है।

...किन्तु भीतर की आँख तो वे ही खोल पाये हैं जो सद्गुरु की शरण लेकर उनके निर्दिष्ट मार्ग पर सच्चाई, स्नेह और तत्परतापूर्वक चल पाये हैं।

भीतर की आँख तो वे ही खोल पाये हैं जो सद्गुरु की शरण लेकर उनके निर्दिष्ट मार्ग पर सच्चाई, स्नेह और तत्परता से चल पाये हैं।

इन चर्म-चक्षुओं से दिखनेवाले जगत को सत्य मानकर आप उसमें अपना सारा समय लगा देते हो। उसमें कोई सार नहीं है क्योंकि एक-न-एक दिन तो वह छूटना ही है। इससे बढ़िया तो, उसमें से अपनी सत्यबुद्धि हटाकर वास्तविक सत्य को पाने का प्रयास करोगे तो बेड़ा पार हो जाएगा।

मोहनिशा सब सोवनहारा।
देखहिं सपने अनेक प्रकारा॥

वास्तव में देखा जाए तो आप जाग्रतावस्था में होते हुए भी, घर-दुकान-कार्यालय में होते हुए भी अध्यात्म की दृष्टि से निद्रा में ही हैं। यह निद्रा है मोह, स्वार्थ, राग-द्वेष और अपने-पराये की। बस, इसी नींद से जागकर अपनी भीतर की आँख खोलना है। जो आपके दिल को चेतना देकर धड़कनें चलाता है, जो आपकी आँखों को निहारने की, कानों को सुनने की, नासिका को सूँघने की, जिह्वा को चखने की एवं त्वचा को स्पर्श करने की शक्ति देता है, मन को संकल्प-विकल्प करने का सामर्थ्य प्रदान करता है, बुद्धि को निर्णय करने की सत्ता देता है उसी

सत्ता के साथ अपने एकत्व का अनुभव करने का नाम ही है- भीतर की आँख खोलना।

कोई देवी-देवता अगर प्रसन्न हो गये तो किसी सद्गुरु के पास जाने की प्रेरणा कर देंगे। जैसे माँ काली ने रामकृष्णदेव को गुरु तोतापुरी की ओर प्रेरित किया था। मुक्ति तो मिलेगी परमात्मज्ञान का आदर करने से, परमात्मस्वरूप में स्थिति करने से। आपका शरीर जब नहीं था तब भी जो था और आपका शरीर नहीं रहेगा तब भी जो रहेगा, उस परमात्म-तत्त्व को जाने बिना आपकी मुक्ति कहाँ से संभव है ? आप जो सचमुच हो, जो आपका वास्तविक स्वरूप है, उसे यदि आपने ठीक से भीतर की आँख से जान लिया तो आप उसी क्षण समस्त झंझटों से मुक्त हो जाओगे। यदि आपको अपनी वास्तविकता का ज्ञान नहीं है तो आपके भीतर की आँख खोलकर आपके वास्तविक स्वरूप का पता बताने के लिए जो तत्पर हैं, ऐसे सद्गुरुदेवों के अनुभवों को अपना अनुभव बनाने के लिए लग जाना चाहिए। स्वप्न एवं नश्वर जगत के मिथ्या संबंधों में अपना अमूल्य मानवजीवन क्यों खपा रहे हो ?

आज तक आपने जो कुछ भी किया, अभी जो कर रहे हो एवं आज के बाद जो भी करोगे, वह सब स्वप्नमात्र ही है। स्वप्न को स्वप्न जान लो। बस, इतना ही तो करना है ! सत्संग में आने के लिए घर से निकले वे घड़ियाँ सपना हो गयीं। यहाँ से जाओगे और कल फिर आओगे तो आज की ये घड़ियाँ भी सपना हो जाएँगी। किन्तु इन सब घड़ियों को देखनेवाले आप आज भी हो और कल भी रहोगे। इस परिवर्तनशील संसार में भी जो अपरिवर्तनशील है, वही परमात्मा आपका आपा है। उसीको जानना आपका परम कर्त्तव्य है और उसे जाना जाता है भीतर की आँख खोलकर।

❀
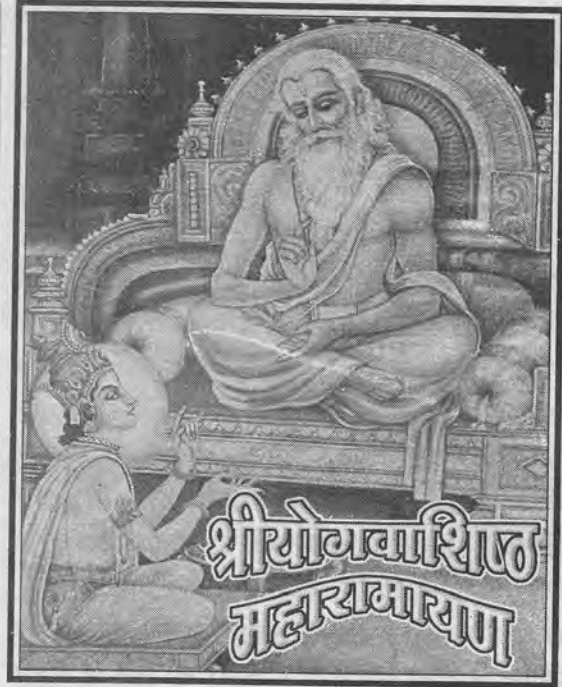
ब्रह्म : अनंत शक्तियों का पुंज

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

स्पन्दनशक्ति के अलावा और अनेकानेक शक्तियाँ ब्रह्म में समाविष्ट हैं। ब्रह्म ही अनंत शक्तियों का पुंज है। ब्रह्म अपनी शक्तियों को जहाँ चाहे, प्रकट कर सकता है।

'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' में कहा है :

सर्वशक्तिमयो आत्मा। आत्मा (परमात्मा) सब शक्तियों से युक्त है। वह जिस शक्ति की जहाँ भावना करे, वहीं अपने संकल्प द्वारा उसे प्रकट हुआ देखता है।

सर्वशक्ति हि भगवानयैव तस्मै हि रोचते।

भगवान सब प्रकार की शक्तियोंवाला तथा सब जगह वर्त्तमान है। वह जहाँ चाहे अपनी शक्ति को प्रकट कर सकता है। वास्तव में नित्य, पूर्ण और अक्षय ब्रह्म में ही समस्त शक्तियाँ मौजूद

हैं। संसार में ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं जो सर्वरूप से प्रतिष्ठित ब्रह्म में मौजूद न हो। शांत आत्मा, ब्रह्म में ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति आदि अनेकानेक शक्तियाँ वर्त्तमान हैं ही। ब्रह्म की चेतनाशक्ति शरीरधारी जीवों में दिखाई देती है तो उसकी स्पन्दनशक्ति, जिसे क्रियाशक्ति भी कहते हैं, हवा में दिखती है। उसी शक्तिरूप ब्रह्म की जड़शक्ति पत्थर में है तो द्रवशक्ति (बहने की शक्ति) जल में दिखती है। चमकने की शक्ति का दर्शन हम आग में कर सकते हैं। शून्यशक्ति आकाश में, सब कुछ होने की भवशक्ति संसार की स्थिति में, सबको धारण करने की शक्ति दशों दिशाओं में, नाशशक्ति नाशों में, शोकशक्ति शोक करनेवालों में, आनन्दशक्ति प्रसन्नचित्तवालों में, वीर्यशक्ति योद्धाओं में, सृष्टि करने की शक्ति सृष्टि में देख सकते हैं। कल्प के अंत में सारी शक्तियाँ स्वयं ब्रह्म में रहती हैं।

परमेश्वर की स्वाभाविक स्पन्दनशक्ति 'प्रकृति' कहलाती है। वही 'जगन्माया' नाम से भी प्रसिद्ध है। यह स्पन्दनशक्तिरूपी भगवान की इच्छा इस दृश्य जगत की रचना करती है। जब शुद्ध संवित् में जड़शक्ति का उदय हुआ तो संसार की विचित्रता उत्पन्न हुई। जैसे चेतन मकड़ी से जड़ जाले की उत्पत्ति हुई वैसे ही चेतन ब्रह्म से प्रकृति उद्भूत हुई। ब्रह्मानन्दरूप आत्मा ही भाव की दृढ़ता से मिथ्यारूप में प्रकट हो रहा है।

प्रकृति के तीन प्रकार हैं : सूक्ष्म, मध्यम और स्थूल। तीनों अवस्थाओं में प्रकृति स्थित रहती है। इसी कारण प्रकृति भी तीन प्रकार की कहलाई। इसके भी तीन भेद हुए- सत्त्व, रज, तम। त्रिगुणात्मक प्रकृति को 'अविद्या' भी कहते हैं। इसी अविद्या से प्राणियों की उत्पत्ति हुई। सारा दृश्य जगत अविद्या के आश्रयगत है। इससे परे परब्रह्म है। जैसे फूल और उसकी सुगंध, धातु और आभूषण, अग्नि और उसकी उष्णता एकरूप है वैसे ही चित्त और स्पन्दनशक्ति एक ही है। मनोमयी स्पन्दनशक्ति उस ब्रह्म से भिन्न हो नहीं सकती। जब चितिशक्ति क्रिया से निवृत्त होकर अपने अधिष्ठान की ओर यानी ब्रह्म में लौट आती है और वहीं शांत भाव से स्थित रहती है तो उसी अवस्था को 'शांत ब्रह्म' कहते हैं। जैसे सोना किसी भी आकार के बिना नहीं रहता वैसे ही परब्रह्म भी चेतनता के बिना, जो कि उसका स्वभाव है, स्थित नहीं रहता। जैसे तिक्तता के बिना मिर्च, मधुरता के बिना गन्ने का रस नहीं रहता वैसे चित्त की चेतनता स्पन्दन के बिना नहीं रहती।

प्रकृति से परे स्थित पुरुष सदा ही शरद ऋतु के आकाश की तरह स्वच्छ, शांत व शिवरूप है। भ्रमरूपवाली प्रकृति परमेश्वर की इच्छारूपी स्पन्दनात्मक शक्ति है। वह तभी तक संसार में भ्रमण करती है कि जब तक वह नित्य तृप्त और निर्विकार शिव का दर्शन नहीं करती। जैसे नदी समुद्र में पड़कर अपना रूप छोड़कर समुद्र ही बन जाती है वैसे ही प्रकृति पुरुष को प्राप्त करके पुरुषरूप हो जाती है, चित्त के शांत हो जाने पर परम पद को पाकर तद्रूप हो जाती है।

जिससे जगत के सब पदार्थों की उत्पत्ति होती है, जिसमें सब पदार्थ स्थित रहते हैं और जिसमें सब लीन हो जाते हैं, जो सब जगह, सब कालों में और सब वस्तुओं में मौजूद रहता है उस परम तत्त्व को ब्रह्म कहते हैं।

यतः सर्वाणि भूतानि प्रतिभान्ति स्थितानि च।
यत्रैवोपशमं यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः॥
ज्ञाता ज्ञानं तथाज्ञेयं द्रष्टादर्शनदृश्यभूः।
कर्ता हेतुः क्रिया यस्मात्तस्मै ज्ञत्यात्मने नमः॥
स्फुरन्तिसीकरा यस्मादानन्दस्याम्बरेऽवनौ।
सर्वेषां जीवनं तस्मै ब्रह्मानन्दात्मने नमः॥

(श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण : १.१.१-२-३)

जिससे सब प्राणी प्रकट होते हैं, जिसमें सब स्थित हैं और जिसमें सब लीन हो जाते हैं, उस सत्यरूप तत्त्व को नमस्कार हो !

जिससे ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय का, दृष्टा-दर्शन-दृश्य का तथा कर्त्ता, हेतु और क्रिया का उदय होता है उस ज्ञानस्वरूप तत्त्व को नमस्कार हो !

जिससे पृथ्वी और स्वर्ग में आनंद की वर्षा होती है और जिससे सबका जीवन है उस ब्रह्मानंदस्वरूप तत्त्व को नमस्कार हो !

ब्रह्म केवल उसको जाननेवाले के अनुभव में ही आ सकता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अवाच्य, अनभिव्यक्त और इन्द्रियों से परे है। ब्रह्म का ज्ञान केवल अपने अनुभव द्वारा होता है। वह परम पराकाष्ठास्वरूप है। वह सब दृष्टियों की सर्वोत्तम दृष्टि है। वह सब महिमाओं की महिमा है। वह सब प्राणीरूपी मोतियों का तागा है जो कि उनके हृदयरूपी छेदों में पिरोया हुआ है। वह सब प्राणीरूपी मिर्चों की तीक्ष्णता है। वह पदार्थ का पदार्थत्व है। वह सर्वोत्तम तत्त्व है।

उस परमेश्वर तत्त्व को प्राप्त करना, उसी सर्वेश्वर में स्थिति करना - यही मानव जीवन की सार्थकता है।

❀

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

कलियुग के आदमी का जीवन कोल्हू के बैल जैसा है। उसके जीवन में कोई ऊँचा लक्ष्य नहीं है। किसीने कलियुग के मानव की दशा पर कहा है :

पैसा मेरा परमेश्वर और पत्नी मेरी गुरु।
लड़के-बच्चे शालिग्राम अब पूजा किसकी करूँ ॥

लोग इतने अल्प मति के हो गये हैं कि जिधर का झोंका आया उधर मुड़ जाते हैं। अपने इष्ट की, गुरु की पूजा कभी नहीं करते हैं, उपासना नहीं करते हैं, पर किसी ने लिख दिया कि :

'जय संतोषी माँ... यह पत्र पढ़कर, ऐसे और पत्र आप लिखोगे तो आपका कल्याण होगा। अगर इसका अनादर करोगे तो आपका बहुत बुरा होगा...' तो आदमी भयभीत हो जाते हैं और पत्र लिखने लग जाते हैं। संतोषी माँ की पूजा भी करने लग जाते हैं, पाठ भी करने लग जाते हैं।

वेदव्यासजी ने अपनी दीर्घदृष्टि से यह जान लिया था कि कलियुग के आदमी में इतनी समता, इतनी शक्ति न होगी कि वह घर-बार छोड़कर ऋषियों के द्वार पर जाए और सेवा-शुश्रूषा करके हृदय शुद्ध कर सके... ऋषियों के पास जाकर

नम्रतापूर्वक प्रार्थना करके आत्मज्ञान, आत्मशांति के विषय में प्रश्न पूछे । इसलिए उन्होंने कृपा करके श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करने के साथ साथ तत्त्वज्ञान की, आत्मज्ञान की बातें भी जोड़ दीं । ग्वालों के साथ गायें चराईं, मक्खन चुराया, गोपियों के चीर हरण किये, कभी तो बंसी बजाई, कभी धेनकासुर-बकासुर को यमसदन पहुँचाया। ऐसी बातों से हास्यरस, शृंगाररस, विरहरस, वीररस जैसे रस भरकर रसीला ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' बनाया। इस ग्रंथ की रचना करके वेदव्यासजी ने जगत पर बड़ा उपकार किया है।

जब पुण्य जोर पकड़ते हैं, जब हृदय से 'मेरे-तेरे' का भाव मिट जाता है, तब हृदय में आनंदरूपी श्रीकृष्ण प्रगट हो जाते हैं। हृदय में कृष्णतत्त्व का आनंद छलकने लगता है।

'श्रीमद्भागवत' की रचना के पहले वेदव्यासजी ने कई ग्रंथों की रचना की थी, पुराणों का संकलन किया था, पर उनके मन में कुछ अभाव खटकता रहता था।

एक बार नारदजी पधारे, तब वेदव्यासजी ने अपनी मनोव्यथा सुनाई। उन्होंने कहा :

''देवर्षि ! मैंने पुराण लिखे, ब्रह्मसूत्र की रचना की, कई भाष्य लिखे, उपनिषदों का विवरण लिखा, लेकिन अभी भी मुझे लगता है कि मेरा कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है । कुछ अधूरा रह गया है, कुछ छूट गया है । मुझे आत्मसंतोष नहीं मिल रहा है।''

कलियुग के आदमी के पास भक्ति तो होगी परन्तु ज्ञान और वैराग्यरूपी बेटे अगर मूर्च्छित होंगे तो भक्ति रोती रहेगी। ज्ञानसहित, वैराग्यसहित दृढ़ भक्ति करोगे तो शीघ्र ही कल्याण होगा।

नारदजी ने कहा : ''तुम्हारा कहना ठीक ही है। तुम्हारा कार्य सचमुच में अधूरा है। ये 'ब्रह्मसूत्र' और उपनिषद् सब लोग नहीं समझ पाएँगे। जिनके पास विवेक-वैराग्य तीव्र होगा, मोक्ष की तीव्र इच्छा होगी उनके लिये 'ब्रह्मसूत्र' जरूरी है। जैसे, किसी आदमी का गला पकड़कर पानी में डूबा दे और वह बाहर निकलने के सिवाय और कुछ नहीं चाहता- ऐसी जिसमें ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा हो, उसके लिये 'ब्रह्मसूत्र' अच्छा है । लेकिन जिन लोगों में परमात्म-प्राप्ति की तड़प नहीं है, जो संसार में रचे-पचे हैं और जो संसार को सत्य मानते हैं, संसार को ही सार मानते हैं, देह में जिनकी आत्मबुद्धि है, जगत में सत्यबुद्धि है और परमात्म-प्राप्ति के लिये जिनके पास समय नहीं है- ऐसे लोगों में 'ब्रह्मसूत्र' और उपनिषद् पढ़ने की रुचि नहीं होगी। कदाचित् वे पढ़ेंगे तो समझ भी नहीं पाएँगे। विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मोक्ष की इच्छा- इन चार साधनों से युक्त आदमी वेदान्त को सुनेगा, ब्रह्मसूत्र सुनेगा तो उसे आत्म-साक्षात्कार हो जाएगा। लेकिन जो साधन-चतुष्टय से सम्पन्न नहीं होगा, वह कितना भी सुने, उस पर उसका असर नहीं होगा। जगत में प्रायः ऐसे लोग ही ज्यादा होते हैं । आपने उन लोगों के उत्थान के लिये क्या उपाय किया है ?

ईश्वर को पाने की तड़पवाला तो कोई विरला ही होगा, बाकी लोग तो यूँ ही अपना समय गँवा देते हैं। आप कोई ऐसे ग्रंथ की रचना कीजिए जिसमें वीरों के लिये वीररस भी हो, विनोद चाहनेवालों को हास्यरस भी मिले, भक्तिमार्गवालों को भक्तिरस भी मिले, जो संसार

में प्रेम रखते हैं उनको कुछ प्रेम की बातें मिल जायें और साथ में तत्त्व का चिंतन भी हो। सब प्रकार के लोगों की मनोदशा का विचार करके ऐसा ग्रंथ बनाया जाये जो सब प्रकार के रसों में सराबोर करते हुए तत्त्वज्ञान का रास्ता दिखाकर परमात्मरस तक पहुँचा सके।''

विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति और मोक्ष की इच्छा- इन चार साधनों से युक्त आदमी वेदान्त को सुनेगा, ब्रह्मसूत्र सुनेगा तो उसे आत्म-साक्षात्कार हो जाएगा।

नारदजी की बात व्यासजी को सौ प्रतिशत जँची। व्यासजी ने समाधि में बैठकर श्लोकों की रचना की। भागवत में तीन सौ पैंतीस अध्याय और अठारह हजार श्लोक हैं। ऐसा नहीं कि वेदव्यासजी श्रीकृष्ण के पीछे लेखनी लेकर घूमे और ग्रंथ की रचना की। समाधि में बैठने पर उन्हें युग-युगान्तर में, कल्प-कल्पान्तर में श्रीकृष्ण की मधुर लीलाएँ आदि जो-जो दिखा उसे लिखने के लिये उन्होंने गणपतिजी का आवाहन किया। वेदव्यासजी श्लोक बोलते गये और गणपतिजी लिखते गये। गणपतिजी तो ऋद्धि-सिद्धि के दाता हैं। उन्होंने श्लोक लिखने में मदद की और इस तरह 'श्रीमद्भागवत' का ग्रंथ तैयार हो गया।

वेदव्यासजी ने वृद्धावस्था में 'श्रीमद्भागवत' की रचना की थी। उन्हें लगा कि वे खुद इसका प्रचार नहीं कर पाएँगे इसलिये उन्हें चिन्ता हुई कि : 'यह शास्त्र मैं किसको दूँ?' आखिर उन्होंने शुकदेवजी को पसंद किया। शुकदेवजी जन्म से ही विरक्त थे, निर्विकार थे। जन्म से ही उन्हें संसार के विषयों में राग नहीं था। वेदव्यासजी ने यह ग्रंथ शुकदेवजी को पढ़ाया और उन्हींके द्वारा इस ग्रंथ का प्रचार हुआ।

जिन लोगों में परमात्म-प्राप्ति की तड़प नहीं है, जो संसार में रचे-पचे हैं और परमात्म-प्राप्ति के लिये जिनके पास समय नहीं है- ऐसे लोगों में 'ब्रह्मसूत्र' और उपनिषद् पढ़ने की रुचि नहीं होगी। कदाचित् वे पढ़ेंगे तो समझ भी नहीं पाएँगे।

शुकदेवजी ने इस पवित्र ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' की कथा परीक्षित को सुनाई। शुकदेवजी उत्तम वक्ता थे और परीक्षित उत्तम श्रोता थे।

इस कथा के प्रारंभ में आता है कि भक्तिरूपी स्त्री रो रही है : ''मेरे ज्ञान और वैराग्यरूपी दो पुत्र अकाल वृद्ध हो गये हैं और मूर्च्छित होकर पड़े हैं।''

जवान माँ के बेटे अकाल वृद्ध होकर मृतप्रायः हो रहे हैं- यह कुछ मर्म की बात है।

कलियुग के आदमी के पास भक्ति तो होगी परन्तु ज्ञान और वैराग्यरूपी बेटे अगर मूर्च्छित होंगे तो भक्ति रोती रहेगी। भक्ति को स्त्री का रूप देकर और ज्ञान-वैराग्य को बेटों का रूप देकर ऐसी कथा बनाकर लोगों को जगाने का प्रयास जिन्होंने किया है, उन वेदव्यासजी की दृष्टि कितनी ऊँची होगी! कितनी विशाल होगी!

आज तो कोई भागवत की कथा करवाते हैं तो उसका फल ऐहिक ही चाहते हैं और इसकी कथा करनेवाला भी अगर लोभी होगा तो कथा के द्वारा भी धन पाना चाहेगा। 'आज तो श्रीकृष्ण का जन्म है... चाँदी का पालना ले आओ... आज तो श्रीकृष्ण की शादी है... रुक्मिणि के लिये गहने लाओ...' ऐसा कहकर कथाकार धन कमाना चाहेगा।

इसलिए वेदव्यासजी ने 'भक्तिरूपी स्त्री के ज्ञान-वैराग्य दो बेटे मूर्च्छित हैं...' ऐसा उदाहरण देकर लोगों को समझाया है कि ज्ञानसहित, वैराग्यसहित दृढ़ भक्ति करोगे

तो शीघ्र ही कल्याण होगा।

इस ग्रंथ के और भी कई नाम हैं। एक नाम है 'भागवत महापुराण'। शेष १७ पुराणों को पुराण कहते हैं लेकिन इस भागवत को महापुराण कहा जाता है क्योंकि इसमें जगह-जगह पर उस महान् तत्त्व का चिंतन और ज्ञान की बातें विशेष मिलती हैं। दूसरा नाम है 'परमहंस संहिता'। शुकदेवजी जैसे आत्मानंद में मस्त रहनेवाले व्यक्ति को भी भागवत के श्लोक और भागवत के आधाररूप मुख्य पात्र श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन बड़ा आनंददायी लगता है। इसका एक और नाम है, वह है 'कल्पद्रुम'। जो मनोकामना रखकर श्रवण-मनन करोगे वह तुम्हारी मनोकामना देर-सबेर पूरी होगी ही। ऐसे ग्रंथ 'श्रीमद्भागवत' में श्रीकृष्ण की लीलाओं के साथ तत्त्वज्ञान की बातें इस ढंग से लिखी गई हैं कि पढ़नेवाला और सुननेवाला इसमें सराबोर हो जाता है और आनंद को पा लेता है।

कई पुण्यशाली लोग अनेक प्रसंगों पर 'भागवत' की कथा का आयोजन करते हैं। घर में कोई खास प्रसंग हो, कोई उत्सव हो, कोई पर्व हो या घर में किसीकी मृत्यु हुई हो, किसी भी निमित्त से 'भागवत सप्ताह' का आयोजन करते हैं। जहाँ भी 'भागवत सप्ताह' होता है, 'भागवत' की कथा होती है वहाँ कथा के चौथे दिन श्रीकृष्ण का जन्म मनाया जाता है। ऐसा नहीं कि श्रीकृष्ण का जन्म बारह महीने में एक बार ही मनाते हैं। जब-जब, जहाँ-जहाँ 'भागवत कथा' होती है तब-तब श्रीकृष्ण का जन्म मनाते हैं। सुबह को भी मनाते हैं, शाम को भी मनाते हैं, अमावस्या को भी मनाते हैं, पूनम को भी मनाते हैं। वैसे तो ऐतिहासिक ढंग से लोग भादों (गुजरात-महाराष्ट्र आदि के अनुसार श्रावण) मास की कृष्ण-अष्टमी की रात को बारह बजे श्रीकृष्ण-जन्म मनाते हैं, पर भक्त लोग तो जब अनुकूलता हुई, जब मौका मिला कि श्रीकृष्ण-जन्म मनाने को उत्सुक रहते हैं। जब पुण्य जोर पकड़ते हैं, जब हृदय से 'मेरे-तेरे' का भाव मिट जाता है, तब हृदय में आनंदरूपी श्रीकृष्ण प्रगट हो जाते हैं। हृदय में कृष्णतत्त्व का आनंद छलकने लगता है।

आपकी मति सुसंस्कृत हो जाये, आत्मज्ञान के रंग से रंग जाये, आपकी मति आत्मदेव के, कृष्णतत्त्व के प्रकाश से प्रकाशित हो जाये- इसके लिए जिन ग्रंथकारों ने, आत्मवेत्ता महापुरुषों ने, वेदव्यासजी जैसे नामी-अनामी ऋषियों ने, महर्षियों ने अपना सर्वस्व लुटा दिया, आपको जगाने के लिए ही अपने जीवन का हर क्षण गुजार दिया उन महा पवित्र आत्माओं के चरणों में हमारे हजारों-हजारों प्रणाम हैं!

श्रीकृष्ण की गुरुसेवा

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गुरु की महिमा अमाप है, अपार है। भगवान स्वयं भी लोककल्याणार्थ जब मानवरूप में अवतरित होते हैं तो गुरुद्वार पर जाते हैं।

राम कृष्ण से कौन बड़ा, तिन्ह ने भी गुरु कीन्ह।
तीन लोक के हैं धनी, गुरु आगे आधीन ॥

द्वापर युग में जब भगवान श्रीकृष्ण अवतरित हुए एवं कंस का विनाश हो चुका, तब श्रीकृष्ण शास्त्रोक्त विधि से हाथमें समिधा लेकर और इन्द्रियों को वश में रखकर गुरुवर सांदीपनि के आश्रम में गये। वहाँ वे भक्तिपूर्वक गुरु की सेवा करने लगे। गुरु-आश्रम में सेवा करते हुए, गुरु सांदीपनि से भगवान श्रीकृष्ण ने वेद-वेदांग, उपनिषद्, मीमांसादि षड्दर्शन, अस्त्र-शस्त्रविद्या, धर्मशास्त्र एवं राजनीति आदि की शिक्षा प्राप्त की। प्रखर बुद्धि के कारण उन्होंने गुरु के एक बार कहने मात्र से ही सब सीख लिया। विष्णुपुराण के मत से चौसठ दिन में ही श्रीकृष्ण ने सभी चौसठों कलाएँ सीख लीं।

श्रीकृष्ण थे तो भगवान, फिर भी गुरु की सेवा उन्होंने स्वयं की है। सत्शिष्यों को पता होता है कि गुरु की एक छोटी-सी सेवा करने से सकामता निष्कामता में बदलने लगती है, खिन्न हृदय आनंदित हो उठता है, सूखा हृदय भक्तिरस से सराबोर हो उठता है।

जब अध्ययन पूर्ण हुआ, तब श्रीकृष्ण ने गुरु से दक्षिणा के लिए प्रार्थना की : ''गुरुदेव ! आज्ञा कीजिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?''

गुरु : ''कोई आवश्यकता नहीं है।''

श्रीकृष्ण : ''आपको तो कुछ नहीं चाहिए, किन्तु हमें दिये बिना चैन नहीं पड़ेगा। कुछ तो आज्ञा करें !''

गुरु : ''अच्छा... जाओ, अपनी माता से पूछ लो।''

श्रीकृष्ण गुरुपत्नी के पास गये एवं बोले :

''माँ ! कोई सेवा हो तो बताइए।''

गुरुपत्नी भी जानती थीं कि श्रीकृष्ण कोई साधारण मानव नहीं बल्कि स्वयं भगवान हैं, अतः वे बोलीं : ''मेरा पुत्र प्रभास क्षेत्र में मर गया है। उसे लाकर दे दो ताकि मैं उसे पयःपान करा सकूँ।''

श्रीकृष्ण : ''जो आज्ञा।''

श्रीकृष्ण रथ पर सवार होकर प्रभास क्षेत्र पहुँचे और वहाँ समुद्र तट पर कुछ देर ठहरे। समुद्र ने उन्हें परमेश्वर जानकर उनकी यथायोग्य पूजा की। श्रीकृष्ण बोले :

''तुमने अपनी बड़ी-बड़ी लहरों से हमारे गुरुपुत्र को हर लिया था। अब उसे शीघ्र लौटा दो।''

समुद्र : ''मैंने बालक को नहीं हरा है, मेरे भीतर पांचजन्य नामक एक बड़ा दैत्य शंखरूप से रहता है, निःसंदेह उसीने आपके गुरुपुत्र का हरण किया है।''

श्रीकृष्ण ने तत्काल जल के भीतर घुसकर उस दैत्य को मार डाला, पर उसके पेट में

गुरुपुत्र नहीं मिला। तब उसके शरीर से पांचजन्य शंख लेकर श्रीकृष्ण जल से बाहर आये एवं यमराज की संयमनी पुरी में गये। वहाँ भगवान ने उस शंख को बजाया। कहते हैं कि उस ध्वनि को सुनकर नारकीय जीवों के पाप नष्ट हो जाने से वे सब वैकुण्ठ पहुँच गये। यमराज ने बड़ी भक्ति के साथ श्रीकृष्ण की पूजा की और प्रार्थना करते हुए कहा : ''हे लीलापुरुषोत्तम! मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?''

श्रीकृष्ण : ''तुम तो नहीं, पर तुम्हारे दूत कर्मवश हमारे गुरुपुत्र को यहाँ ले आये हैं। उसे मेरी आज्ञा से वापस दे दो।''

'तथास्तु' कहकर यमराज उस बालक को ले आये।

श्रीकृष्ण ने गुरुपुत्र को, जैसा वह मरा था वैसा ही उसका शरीर बनाकर, समुद्र से लाये हुए रत्नादि के साथ गुरुचरणों में अर्पित करके कहा :

''गुरुदेव! और भी जो कुछ आप चाहें, आज्ञा करें।''

गुरुदेव : ''वत्स ! तुमने गुरुदक्षिणा भली प्रकार से संपन्न कर दी। तुम्हारे जैसे शिष्य से गुरु की कौन-सी कामना अवशेष रह सकती है ? वीर ! अब तुम अपने घर जाओ। तुम्हारी कीर्ति श्रोताओं को पवित्र करे और तुम्हारे पढ़े हुए वेद नित्य उपस्थित और सारवान् रहकर इस लोक एवं परलोक में तुम्हारे अभीष्ट फल को देने में समर्थ हों।''

गुरुसेवा का कैसा सुन्दर आदर्श प्रस्तुत किया है श्रीकृष्ण ने ! थे तो भगवान, फिर भी गुरु की सेवा उन्होंने स्वयं की है।

सत्शिष्यों को पता होता है कि गुरु की एक छोटी-सी सेवा करने से सकामता निष्कामता में बदलने लगती है, खिन्न हृदय आनंदित हो उठता है, सूखा हृदय भक्तिरस से सराबोर हो उठता है। गुरुसेवा में क्या आनंद आता है, यह तो किसी सत्शिष्य से ही पूछकर देखें।

गुरु की सेवा साधु जाने,
गुरुसेवा कहाँ मूढ़ पिछानै।
गुरुसेवा सबहुन पर भारी,
समझ करो सोई नरनारी ॥
गुरुसेवा सों विघ्न विनाशे,
दुर्मति भाजै पातक नाशै।
गुरुसेवा चौरासी छूटै,
आवागमन का डोरा टूटै ॥
गुरुसेवा यम दंड न लागै,
ममता मरै भक्ति में जागै।
गुरुसेवा सूं प्रेम प्रकाशे,
उनमत होय मिटै जग आशै ॥
गुरुसेवा परमातम दरशै,
त्रैगुण तजि चौथा पद परशै।
श्री शुकदेव बतायो भेदा,
चरनदास कर गुरु की सेवा ॥

❀

✻ इस संसाररूपी वन में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक इन तीनों तापों से संतप्त मनुष्यों के लिए श्रीहरि की भक्तिमयी सुधा ही श्रेष्ठ आश्रय है।

✻ मन एक चंचल घोड़े के समान है। जो इसे काबू में कर लेता है, वही सच्चा संन्यासी है।

– पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मीराबाई की अडिगता

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

मीरा के जीवन में कई विपत्तियाँ आयीं लेकिन मीरा के चित्त में अशांति नहीं हुई। मीरा के कीर्तन-भजन में भक्तिरस से लोग इतने सराबोर हो जाते कि बात दिल्ली में अकबर के कानों तक जा पहुँची। अकबर ने तानसेन को बुलवाया और कहा :

''तानसेन ! मैंने सुना है कि मीरा की महफिल में जाने से लोग संसारी दुःख भूल जाते हैं !''

तानसेन : ''हाँ।''

अकबर : ''मैंने सुना है कि मीरा के पद सुनते-सुनते वह रस प्रगट होने लगता है जिसके आगे संसार का रस फीका हो जाता है ! क्या ऐसा हो सकता है ?''

तानसेन : ''हाँ, जहाँपनाह ! हो सकता है।''

अकबर : ''मैंने सुना है कि मीरा के कीर्तन-भजन में लोग अपनी मान-बड़ाई, छोटापन-बड़प्पन वगैरह भूलकर रसमय हो जाते हैं ! क्या ऐसा हो सकता है ?''

तानसेन : ''हाँ, जहाँपनाह ! हो सकता नहीं, होता है।''

अकबर : ''मुझे ले चलो मीरा के पास।''

तानसेन : ''अगर आप राजाधिराज महाराज होकर चलोगे तो मीरा की करुणा-कृपा के वातावरण का लाभ आपको नहीं मिल सकेगा। हमें भक्त का वेश बनाकर जाना चाहिए।''

अकबर एवं तानसेन ने भक्त का वेश बनाया एवं मीरा के कीर्तन-भजन में आकर बैठे।

एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है :

आप एक कमरे में दस तंबूरे मँगवा लो। नौ तंबूरों को नौ व्यक्ति बजायें एवं दसवें तंबूरे को यूँ ही दीवार के सहारे रख दो। अगर नौ तंबूरे झंकार करते हैं तो दसवाँ तंबूरा बिना बजानेवाले के भी झंकृत होने लगता है। उसके तारों में स्पंदन होने लगते हैं।

जब जड़ तंबूरा स्पंदन झेल लेता है तो जहाँ भगवान के सैकड़ों तंबूरे आनंद ले रहे हों वहाँ ये दो तंबूरे भी चुप कैसे बैठ सकते थे ? तानसेन भी झूमा और अकबर भी झूमा।

जब सत्संग-कीर्तन पूरा हुआ तब एक-एक करके लोग वहाँ रखी हुई ठाकुरजी की मूर्ति एवं मीरा को प्रणाम करने लगे। तानसेन ने भी मत्था टेका। अकबर ने सोचा : 'कोई दूध का प्याला भी पिला देता है तो बदले में उसे आमंत्रण देते हैं कि 'भाई ! तू हमारे यहाँ आना।' इस मीरा ने तो रब की भक्ति का प्याला पिलाया है तो उसे क्या दें ?' अकबर ने गले से मोतियों की माला निकालकर मीरा के चरणों में रख दी।

मीरा के सत्संग-कीर्तन में केवल सत्संगी ही आते थे, ऐसी बात नहीं थी। विक्रम राणा के खुफिया विभाग के गुप्तचर भी वहाँ आते थे। उनकी नजर पड़ी : 'यह मोतियों की माला ! यह साधारण तो नहीं लगती...' उन्होंने मोतियों की माला लानेवाले का पीछा किया एवं विक्रम राणा

को जाकर भड़काया :

''आपकी भाभी के गले में जो हार पड़ा है वह किसी साधारण व्यक्ति का हार नहीं है। अकबर आपकी भाभी को हार दे गया है। हमको लगता है कि अकबर एवं मीरा का आपस में गलत रिश्ता है।''

खुफियावालों को पता था कि विक्रम राणा मीरा का विरोधी है। अतः उन्होंने भी कुछ मसाला डालकर बात सुना दी। विक्रम राणा मीरा को बदनाम करके मौत के घाट उतारने की साजिश में लगा रहता था। स्कूल के शिक्षकों को आदेश दिया गया था कि बच्चों से कहें कि : 'मीरा ऐसी है... वैसी है...' घर-घर में मीरा के लिए नफरत एवं अपने घर में भी मीरा के लिए मुसीबत... फिर भी मीरा की भक्ति इतनी अडिग थी कि इतने विरोधों के बावजूद भी भगवान के आनंद-माधुर्य में मीरा स्वयं तो डूबी ही रहती थी, औरों को डुबाने का सामर्थ्य भी उसके पास था।

मीरा की भक्ति इतनी अडिग थी कि इतने विरोधों के बावजूद भी भगवान के आनंद-माधुर्य में मीरा स्वयं तो डूबी ही रहती थी, औरों को डुबाने का सामर्थ्य भी उसके पास था।

विक्रम राणा को जब यह पता चला कि अकबर आया था, तब वह पैर पटकता-पटकता आया मीरा के कक्ष के पास एवं दरवाजा खटखटाते हुए बोला :

''भाभीऽऽऽ... ! दरवाजा खोल। तू मेवाड़ पर कलंक है। अब मैं तेरी एक न सुनूँगा। मेवाड़ में अब तेरा एक घण्टे रहना भी मुझे स्वीकार नहीं है।''

विक्रम हाथों में नंगी तलवार लिये हुए बड़बड़ाये जा रहा था। मीरा ने दरवाजा खोला। मीरा के चेहरे पर भय की रेखा तक न थी। यही है भक्ति का प्रभाव ! मृत्यु सामने है फिर भी चित्त में उद्विग्नता नहीं।

''अगर आप राजाधिराज महाराज होकर चलोगे तो मीरा की करुणा-कृपा के वातावरण का लाभ आपको नहीं मिल सकेगा। हमें भक्त का वेश बनाकर जाना चाहिए।''

विक्रम : ''अपना सिर नीचे झुका दे। मैं तेरी एक बात भी सुनने के लिए नहीं आया हूँ। आज तेरे इस सिररूपी नारियल की बलि मेवाड़ की भूमि को दूँगा ताकि मेवाड़ के पाप मिट जायें।''

भक्तों के जीवन में कैसी-कैसी विपत्तियाँ आती हैं !

मीरा ने सिर झुका दिया। विक्रम राणा पुनः बोला :

''आज तक तो सुना था कि तुम मुण्डों (साधुओं के लिए प्रयुक्त हल्का शब्द) के चक्कर में हो लेकिन आज पता चला है कि अकबर जैसों के साथ भी तेरी साँठ-गाँठ है। अब तू इस धरती पर जी नहीं सकती।''

विक्रम ने दोनों हाथों से तलवार उठायी और ज्यों-ही प्रहार करने के लिए उद्यत हुआ, त्यों-ही हाथ रुक गये और उठे हुए हाथ नीचे आने की चेतना ही खो बैठे। एक-दो मिनट तो विक्रम राणा ने अपनी बहादुरी की डींग मारी लेकिन मीरा की भक्ति के आगे उसकी शक्ति क्षीण हो गई। राणा घबराया और बोल पड़ा : ''भाभीऽऽऽ... ! यह क्या हो गया ?''

मीरा ने सिर ऊँचा किया और पूछा : ''क्या बात है ?''

विक्रम : ''भाभी ! यह तुमने क्या कर

दिया ?''

मीरा : ''मैंने तो कुछ नहीं किया।''

फिर मीरा ने प्रभु से प्रार्थना की : ''हे कृष्ण ! इन्हें माफ कर दो।''

विक्रम राणा के हाथों में चेतना आयी, तलवार कोने में गिरी और उसका सिर सदा के लिए मीरा के चरणों में झुक गया।

परमात्म-पथ के पथिक कभी-भी, किसी भी विघ्न-बाधा से नहीं घबराते। सामने मृत्यु ही क्यों न खड़ी हो, उनका चित्त विचलित नहीं होता।

ठीक ही कहा है कि :

बाधाएँ कब बाँध सकी हैं, आगे बढ़नेवालों को ?
विपदाएँ कब रोक सकी हैं, पथ पर चलनेवालों को ?

संत सद्भाव, सत्कर्म और ज्ञान के समन्वित स्वरूप होते हैं। उनके अंतःकरण से प्रस्फुटित प्रेम, उनका आभामंडल, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना से स्फुरित उनकी अमृतवाणी समग्र विश्व के लिए कल्याणकारी और आनंददायी होती है। उनकी उपस्थितिमात्र से प्राणिमात्र को जो लाभ होता है, वह अवर्णनीय है। किसी शिष्य ने ठीक ही कहा है :

गुरुजी ! तुम तसल्ली न दो,
सिर्फ बैठे ही रहो...
महफिल का रंग बदल जायेगा...
गिरता हुआ दिल भी सँभल जायेगा...

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

नवनिहालों को उद्बोधन

प्रिय विद्यार्थियों !

तुम भारत का भविष्य, विश्व का गौरव और अपने माता-पिता की शान हो। तुम्हारे भीतर बीजरूप में ईश्वर का असीम सामर्थ्य छुपा हुआ है। जिसने भी अपनी सुषुप्त योग्यताओं को जगाया, वह महान् हो गया। इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में उनका नाम अंकित हो गया। वे मरकर भी अमर हो गये, अपनी अमिट छाप संसार में छोड़ गये। वास्तव में, इतिहास उन चन्द महापुरुषों एवं वीरों की ही गाथाएँ हैं जिनमें अदम्य साहस, शौर्य और पराक्रम कूट-कूटकर भरा हुआ था। तुम्हारे भीतर भी ये शक्तियाँ सुषुप्त रूप में पड़ी हुई हैं। तुम जितने अंशों में अपनी उन शक्तियों को विकसित कर पाओगे, उतना ही महान् हो सकोगे।

आज जो संत-महात्मा हैं, अच्छे-अच्छे नेता हैं और समाज के अग्रणी हैं, वे भी पहले तुम्हारे जैसे बालक ही थे। अपने दृढ़ संकल्प, पुरुषार्थ और संयम का अवलंबन लेकर ही वे अपने व्यक्तित्व को निखार पाये हैं और लाखों के प्रेरणास्रोत बने हैं। महापुरुषों के मार्गदर्शन में

चलकर व उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर तुम भी महान् हो जाओ।

हे युवानों ! संसार में ऐसी कोई वस्तु या स्थिति नहीं है जो संकल्प-बल और पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त न हो सके। पूर्ण उत्साह और लगन से किया गया पुरुषार्थ कभी व्यर्थ नहीं जाता।

प्यारे विद्यार्थियों ! तुम जो बनना चाहते हो उसके लिए आवश्यक सामर्थ्य तुम्हारे भीतर ही विद्यमान है, पर वह सुषुप्त अवस्था में पड़ा है। उसे जगाकर तुम सफलता की बुलंदियों तक पहुँच सकते हो।

तुम वर्त्तमान में चाहे कितने भी निम्न श्रेणी के विद्यार्थी हो, इन्द्रिय-संयम, एकाग्रता, पुरुषार्थ और दृढ़ संकल्प के द्वारा उच्चतम योग्यता प्राप्त कर सकते हो। इतिहास में ऐसे कई दृष्टांत देखने को मिलते हैं। पाणिनि नाम का बालक वर्षों तक अभ्यास करने के बाद भी पहली कक्षा भी पास नहीं कर सका, पर बाद में वही अपने दृढ़ संकल्प, पुरुषार्थ, उपासना एवं योग के अभ्यास से विश्वविख्यात संस्कृत व्याकरण का रचयिता बना। आज भी पाणिनि का संस्कृत व्याकरण अद्वितीय माना जाता है।

मूले कुठाराघात। आपकी उन्नति में बाधक दुर्बलता के विचारों को जड़ से ही उखाड़ फेंको।

अपनी मानसिक शक्तियों को नष्ट करनेवाली बुरी आदतों में, तम्बाकू-गुटखा के व्यसनों में एवं टी.वी. चैनलों के भड़कीले कार्यक्रमों में समय बिगाड़ना, फिल्में देखना, विडियो गेम्स आदि से आँखें बिगाड़ना- यह अपना पतन आप आमंत्रित करना है।

हल्के संग का त्याग, सत्शास्त्रों का अध्ययन, सत्संग-श्रवण, सारस्वत्य मंत्र का जप व ध्यान करना- यह बुद्धिशक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यंत उपयोगी है। तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथों में है। तुम्हें महान्, तेजस्वी व श्रेष्ठ विद्यार्थी बनना है तो अभी से दृढ़ संकल्प करके त्याज्य चीजों को छोड़कर जीवन-विकास की बातों को अपनाओ। हजार बार फिसल गये फिर भी हिम्मत करो... विजय तुम्हारी ही होगी। शाबाश वीर ! शाबाश...

दीनता के विचारों को कुचल डालो।

कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा...

करोगे न हिम्मत ? सत्पथ पर लगोगे न भारत के लाल ? होगे न निहाल ?

❀

मानवता में पहला नंबर

कलकत्ते की एक प्रसिद्ध स्कूल में दो विद्यार्थी सदा पहला-दूसरा नंबर लाते थे। पहले नंबरवाले का सदैव पहला और दूसरे नंबरवाले का सदैव दूसरा नंबर ही आता था। पिछले पाँच-छः साल से यही सिलसिला चल रहा था।

"बेटा ! भले इस स्कूली पढ़ाई में तू दूसरा नंबर आया किन्तु मानवता में तू पहला नंबर ही आया है।"

एक बार पहला नंबर लानेवाले विद्यार्थी की माँ बीमार पड़ी। वह विद्यार्थी माँ की सेवा में लग गया एवं दो महीने तक स्कूल नहीं जा पाया। अंत में उसकी माँ का स्वर्गवास हो गया।

मास्टरसहित सभी विद्यार्थी सोचने लगे कि इस बार दूसरे नंबरवाला विद्यार्थी प्रथम आयेगा।

पहले नंबरवाला विद्यार्थी सत्संगी था। उसने सुन रखा था कि : 'सुख-दुःख के प्रसंग तो आते-जाते रहते हैं। दुःख के दबाव से दब मरना यह

कायरता है और दुःख के सिर पर पैर रखकर आगे बढ़ना यह बहादुरों का काम है।'

वह कौन-सा उकदा जो हो नहीं सकता ?
तेरा जी न चाहे तो हो नहीं सकता।
एक छोटा-सा कीड़ा पत्थर में घर करे।
इन्सान क्या दिले दिलबर में घर न करे !

वह बालक सत्संग में जाता था अतः सत्संग की बातों ने उसके दिल में बड़ी शक्ति दे दी। माँ मर गयी तो उसे दुःख हुआ लेकिन उसने सोचा : 'आँसू आँखों से बह रहे हैं एवं दुःख चित्त को हुआ है। मेरी आत्मा इसको देख रही है।'

परीक्षा में केवल पाँच-सात दिन ही बाकी रह गये थे। उसने हिम्मत करके पढ़ाई की और परीक्षा दे दी। जब परीक्षाफल आया तो विद्यार्थी और अध्यापक तो ठीक, लेकिन स्कूल के प्रधानाचार्य भी दंग रह गये कि पहले नंबरवाला ही पहला आया !

पहले नंबरवाले को तो सत्संग मिला ही था लेकिन दूसरे नंबरवाले को भी अपनी माँ के द्वारा कुछ रहस्य मिल चुका था। दूसरे नंबरवाले को मास्टर अकेले में ले गये एवं कहा :

''तुम दोनों के पेपर हमने फिर से जाँचे हैं। पहले नंबरवाले के तो उत्तर सही हैं ही लेकिन तुम चाहते तो पहला नंबर ला सकते थे। कुछ ऐसे सरल प्रश्न थे, जिसके उत्तर ही तुमने नहीं लिखे। इस बार तो तुम्हें प्रथम स्थान पाने का मौका मिला था क्योंकि दो महीने तक उसकी माँ बीमार रही, फिर चल बसी। उसको सदमा लगा फिर भी वह पहला ही आया और तुम दूसरा। ऐसा क्यों ?''

विद्यार्थी : ''मैंने जानबूझकर वे प्रश्न छोड़े थे।''

मास्टर : ''जानबूझकर ?''

विद्यार्थी : ''हाँ। जो सदैव पहला आता था उसकी माँ इस बार बीमार हो गयी और वह माँ की सेवा में लगा रहा। यह उसकी सच्ची पढ़ाई थी। फिर उसकी माँ चल बसी तो उसके हृदय में सदमा लगा होगा। अगर इस समय मैं पहला आता तो उसे दूसरा सदमा लग जाता। इसीलिए जानबूझकर मैंने कुछ उत्तर नहीं लिखे क्योंकि वह मेरा विद्यार्थी बंधु है।''

प्राचार्य एवं शिक्षकों की आँखों से प्रेम के आँसू बह निकले। प्राचार्य ने उस बालक को गले लगाते हुए कहा :

''बेटा ! भले इस स्कूली पढ़ाई में तू दूसरा नंबर आया किन्तु मानवता में तू पहला नंबर ही आया है।''

'मन' शब्द में जो मकार है, वह अहंकार का वाचक है और नकार उसके निषेध का द्योतक है। अतः 'मन' शब्द के भावार्थ से ही जीव के लिए अहंकार के त्याग की प्रेरणा मिलती है। अहंकार से युक्त मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। निरहंकार, नम्र व सदाचारी व्यक्ति ही सुखी रह सकता है। जिसका चित्त अहंकार से ग्रस्त है, वह घोर अंधकार से पूर्ण नरक में गिरता है। पंचमहाभूतों से निर्मित नाशवन्त देह में अहंबुद्धि का होना ही संसारबंधन का मूल कारण है। वही अहंबुद्धि मनुष्यों को कर्मों के बंधन में डालती है जिससे जन्म-मरण की अनन्त शृंखलाएँ बनती जाती हैं। अतः मन के द्वारा प्रयत्नपूर्वक अहंता, ममता का त्याग ही श्रेयस्कर है।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

कभी-कभी व्यवहार-जगत में भी शब्दार्थ के नहीं, भावार्थ या लक्ष्यार्थ के अनुसार ही कार्य करना पड़ता है। जैसे, गाड़ी भागती-भागती दिल्ली से चंडीगढ़ आती है किन्तु कहते हैं कि 'चंडीगढ़ आया।' वास्तव में चंडीगढ़ नहीं आता किन्तु गाड़ी चंडीगढ़ आती है।

सास कहती है : ''बहू ! मैं कथा में जा रही हूँ। चावल बीन लेना।'' ...तो बहू चावल नहीं बीनेगी, चावल में से कंकड़-पत्थर बीनेगी।

माँ कहती है : ''बेटा ! जरा आटा पिसा लाओ।'' ...तो बेटा गेहूँ पिसवाने जायेगा, आटा नहीं पिसवायेगा। अतः जैसे यहाँ शब्दार्थ नहीं भावार्थ या लक्ष्यार्थ पकड़ना पड़ता है ऐसे ही शास्त्र का भी लक्ष्यार्थ समझना पड़ता है।

जैसे सागर के पानी को सूर्य की किरणें उठाती हैं एवं वही पानी जब मेघ के रूप में बरसता है तो अमृत के समान मधुर हो जाता है, ऐसे ही शास्त्ररूपी सागर से अनुभवी संत ज्ञान उठाते हैं और फिर जब बरसाते हैं तो हमारे लिए सत्संग-अमृत बन जाता है।

मृत्यु से पूर्व एक पिता ने अपने पुत्र की भलाई के लिए बही में लिख छोड़ा था कि : ''सब दिन समान नहीं होते इसलिए मैंने आश्विन शुक्ल द्वितीया को दिन के दस बजे मंदिर के कलश में एक लाख स्वर्णमुद्राएँ छिपाकर रखी हैं। अति आवश्यकता एवं संकट के समय तुम उसका उपयोग कर सकते हो।''

समय बीता। पुत्र को व्यापार में घाटा पड़ा। बहियाँ जाँचीं तो एक गुप्त जगह पर उपरोक्त वाक्य लिखा मिला। बेटे ने पिताजी द्वारा बनवाये गये मंदिर का कलश तुड़वाया तो एक भी स्वर्णमुद्रा न मिली। उसे हुआ कि : 'मेरे पिता मुझे बहुत चाहते थे अतः झूठ क्यों लिखेंगे ?' मंदिर की एक-एक ईंट तुड़वा दी गयी लेकिन कुछ न मिला। उल्टे बदनामी ही हाथ लगी कि 'बाप ने मंदिर बनवाया और यह अभागा मंदिर का शिखर तोड़ रहा है।'

आखिरकार पुत्र पिता के किसी परिचित बुजुर्ग के पास गया एवं बोला : ''इस विधान के बारे में पिताजी आपसे कुछ कह गये हैं क्या ?''

बुजुर्ग : ''इस विषय में मुझसे कुछ कह नहीं गये हैं लेकिन वे झूठा लिखकर भी नहीं गये होंगे। मुझे विश्वास है कि वे जो लिखकर गये हैं, वह सही है। लेकिन तुझे वह धन नहीं मिलेगा। मैं तुझे वह दिला सकता हूँ।''

पुत्र : ''मेहरबानी कीजिए। मैं अभी बड़ी तकलीफ में हूँ।''

बुजुर्ग : ''अभी नहीं। आश्विन शुक्ल द्वितीया को सुबह नौ बजे आना एवं मुझे ले चलना। ठीक दस बजे ही वह खजाना मिल सकेगा। मंदिर का शिखर और कलश जैसा था, ठीक वैसे-का-वैसा पुनः बनवा दे।''

बेटे ने मंदिर का शिखर और कलश पुनः बनवा दिया। फिर आश्विन शुक्ल द्वितीया को

सुबह नौ बजे उन बुजुर्ग को लेकर मंदिर पहुँचा एवं बोला : ''काका ! अब बता दीजिए।''

बुजुर्ग : ''ठहरो... दस बजने दो।''

जब ठीक दस बज गये तब प्रांगण में मंदिर के कलश की जहाँ छाया पड़ी वहाँ उन बुजुर्ग ने गोल लकीर मार दी एवं कहा : ''बेटा ! यहाँ खोदो।''

वहाँ खोदा गया तो एक लाख स्वर्णमुद्राएँ मिल गयीं।

शास्त्र भी ऐसे ही हैं। कोई मनमाने ढंग से शास्त्र पढ़े तो कभी थोड़ा-बहुत समझ में आता है, नहीं तो गड़बड़ भी हो सकती है।

शास्त्रजालं महारण्यं चित्तभ्रमणस्य कारणम्।

शास्त्र महा अरण्य के समान हैं जिनमें चित्त भटक सकता है। जैसे सागर का पानी। सागर से ही बाष्पीभूत होकर पानी उठता है और बरसता है। वह पानी भूमि में उतरता है और उसीसे सारे कुएँ आदि भरते हैं। बारिश के पानी से ही सारी नदियाँ बहती हैं। सागर का खारा पानी बारिश के रूप में मीठा होकर बरसता है और वही हम पीते हैं लेकिन सीधे सागर के पानी से न तो खिचड़ी बनायी जा सकती है, न चाय आदि बनाया जा सकता है।

जैसे सागर के पानी को सूर्य की किरणें उठाती हैं एवं वही पानी जब मेघ के रूप में बरसता है तो अमृत के समान मधुर हो जाता है, ऐसे ही शास्त्ररूपी सागर से अनुभवी संत ज्ञान उठाते हैं और फिर जब बरसाते हैं तो हमारे लिए सत्संग-अमृत बन जाता है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ८१ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई तक अपना नया पता भिजवा दें।

एकादशी व्रत-महिमा

[९ जुलाई '९९ : योगिनी एकादशी पर विशेष]

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हर पंद्रह दिन में एकादशी आती है। शरीर मोटा या सक्षम हो तो निर्जला अथवा केवल जल पीकर यह एकादशी व्रत करना चाहिए। अगर नहीं कर सकते तो थोड़ा फल लेकर व्रत करना चाहिए। अगर वह भी नहीं कर सकते तो ठीक-ठीक नपा-तुला फल-दूध लेकर एकादशी व्रत करना चाहिए।

समय-बेसमय तथा अनुकूल-प्रतिकूल खुराक खाने से शरीर में दोष, नाड़ियों में कच्चा रस आदि जो इकट्ठे हो जाते हैं वे तथा वात-पित्त-कफजन्य मुख्य त्रिदोष भी पंद्रह दिन में एक दिन उपवास करने से समाप्त होने लगते हैं।

दस इन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन, इन एकादशों को इस दिन शुभ कर्म में लगाना, संयम का पालन करना, हीन कर्म का त्याग करना चाहिए। दशम के दिन हल्का-फुल्का भोजन करना तथा एकादशी को पूरा व्रत करना चाहिए। द्वादशी को सेवापूजा की जगह पर बैठकर भुने हुए सात चनों के चौदह टुकड़े करके अपने सिर के पीछे फेंकना

चाहिए । 'मेरे सात-सात जन्मों के शारीरिक, वाचिक और मानसिक पाप नष्ट हुए' यह भावना करके सात अंजली जल पीना और चने के सात दाने खाकर व्रत खोलना चाहिए । राजा अंबरीष, च्यवन ऋषि के पुत्र और अन्य असंख्य लोगों ने एकादशी व्रत से शारीरिक स्वास्थ्य, यश, परम पुण्य-फल की प्राप्ति की थी । हर एकादशी का अपना-अपना माहात्म्य है । बुद्धिमान व्यक्ति को इस व्रत के दिन आलू की सब्जी, मुरैया, कढ़ी, वेफर- इन कचरापट्टियों से बचना चाहिए । आइसक्रीम, पेप्सी, कोका कोला आदि अपवित्र पदार्थों से बचना चाहिए । दोपहर-शाम को दूध एवं शिकंजी आदि का उपयोग स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर कर सकते हैं । एकादशी का व्रत त्रिदोषनाशक, तमाम पापनाशक, पुण्यदायी, भगवत्तत्त्व की प्राप्ति करानेवाला है । हर एक मनुष्य को श्रद्धा-भक्ति से यह व्रत करना चाहिए । अति कमजोर व्यक्ति को अति भूखामरी नहीं करना चाहिए। अति कमजोर सुहागिनी को अति भूखामरी नहीं करना चाहिए । एकादशी के दिन मौन रहा जाए, जप किया जाए, रात्रि-जागरण किया जाए, दिन की नींद से बचा जाए तो महा पुण्यदायी होगा । इससे मनोबल बढ़ेगा तथा तप, त्याग एवं साधना में निखार आयेगा ।

एकादशी के दिन मौन रहा जाए, जप किया जाए, रात्रि-जागरण किया जाए, दिन की नींद से बचा जाए तो महा पुण्यदायी होगा । इससे मनोबल बढ़ेगा तथा तप, त्याग एवं साधना में निखार आयेगा ।

योगिनी एकादशी

युधिष्ठिर ने पूछा : ''वासुदेव ! आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका क्या नाम है ? कृपया उसका वर्णन कीजिए ।''

भगवान श्रीकृष्ण बोले : ''नृपश्रेष्ठ ! आषाढ़ के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम 'योगिनी एकादशी' है । यह बड़े-बड़े पातकों का नाश करनेवाली है । संसारसागर में डूबे हुए प्राणियों के लिए यह सनातन नौका के समान है । तीनों लोकों में यह सारभूत व्रत है ।

अलकापुरी में राजाधिराज कुबेर रहते हैं । वे सदा भगवान शिव की भक्ति में तत्पर रहनेवाले हैं। उनके हेममाली नामक एक यक्ष सेवक था, जो पूजा के लिए फूल लाया करता था । हेममाली की पत्नी विशालाक्षी बड़ी सुंदरी थी । वह यक्ष कामपाश में आबद्ध होकर सदा अपनी पत्नी में आसक्त रहता था। एक दिन हेममाली मानसरोवर से फूल तो लाया, पर कामासक्त होकर घर में ही ठहर गया । कुबेर के भवन में न जा सका ।

जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य-पालन में लापरवाही करता है, प्रमाद करता है उसका आखिर पतन होता है । निज स्वार्थ अथवा नाशवन्त इन्द्रिय-सुख के लिए जो अपने कर्त्तव्य का, मिली हुई सेवा का त्याग करता है उसकी बड़ी दुर्गति होती है ।

यक्षराज कुबेर मंदिर में शिवजी का पूजन कर रहे थे । उन्होंने दोपहर तक फूल आने की प्रतीक्षा की । जब पूजा का समय व्यतीत हो गया तो उन्होंने कुपित होकर सेवकों से पूछा :

''यक्षों ! हेममाली क्यों नहीं आ रहा है, इस बात का पता तो लगाओ !''

यक्षों ने कहा : ''राजन् ! वह तो पत्नी की कामना में आसक्त हो अपनी इच्छा के अनुसार घर में ही रमण कर रहा है ।''

उनकी बात सुनकर कुबेर क्रोध से भर गये

और तुरंत ही हेममाली को बुलवाया । देर हुई यह जानकर हेममाली के नेत्र भय से व्याकुल हो रहे थे । वह आकर कुबेर के सामने खड़ा हुआ। उसे देखकर कुबेर की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं । वे बोले :

''ओ पापी ! ओ दुष्ट ! ओ दुराचारी ! तूने भगवान की अवहेलना की है, अतः तू कोढ़ से युक्त और अपनी उस प्रियतमा से वियुक्त होकर इस स्थान से भ्रष्ट हो अन्यत्र चला जा।''

कुबेर के ऐसा कहने पर वह उस स्थान से नीचे गिर गया। उस समय उसके हृदय में महान् दुःख हो रहा था। कोढ़ से सारा शरीर पीड़ित था। परन्तु शिवपूजा के प्रभाव से उसकी स्मरणशक्ति लुप्त नहीं होती थी। पातक से दबा होने पर भी वह अपने पूर्वकर्म को याद रखता था । फिर इधर-उधर घूमता हुआ वह पर्वतों में श्रेष्ठ मेरु गिरि के शिखर पर गया। वहाँ उसे तपस्या के पुंज मुनिवर मार्कण्डेयजी का दर्शन हुआ। पापकर्मा यक्ष ने दूर से ही मुनि के चरणों में प्रणाम किया । मुनिवर मार्कण्डेयजी ने उसे भय से काँपता हुआ देख परोपकार की इच्छा से निकट बुलाकर कहा :

''तुझे कोढ़ के रोग ने कैसे दबा लिया ? तू क्यों इतना अधिक निंदनीय जान पड़ता है ?''

यक्ष बोला : ''मुने ! मैं कुबेर का अनुचर हूँ। मेरा नाम हेममाली है। मैं प्रतिदिन मानसरोवर से फूल लाकर शिवपूजा के समय कुबेर को दिया करता था। एक दिन पत्नी-सहवास के सुख में फँस जाने के कारण मुझे समय का ज्ञान ही नहीं रहा । अतः राजाधिराज कुबेर ने कुपित होकर मुझे शाप दे दिया, जिससे मैं कोढ़ से आक्रान्त होकर अपनी प्रियतमा से बिछुड़ गया। मुनिश्रेष्ठ ! इस समय किसी शुभ कर्म के प्रभाव से मैं आपके निकट आ पहुँचा हूँ। संतों का चित्त स्वभावतः परोपकार में लगा रहता है, अतः मुझ अपराधी को आप कर्त्तव्य का उपदेश दीजिए।''

मार्कण्डेयजी ने कहा : ''तुमने यहाँ सच्ची बात कही है, असत्य भाषण नहीं किया है, इसलिए मैं तुम्हें कल्याणप्रद व्रत का उपदेश करता हूँ। तुम आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में योगिनी एकादशी का व्रत करो। इस व्रत के पुण्य से तुम्हारा कोढ़ निश्चय ही दूर हो जायेगा।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : ''ऋषि के ये वचन सुनकर हेममाली दण्ड की भाँति मुनि के चरणों में पड़ गया । मुनि ने उसे उठाया । इससे उसको बड़ा हर्ष हुआ। मार्कण्डेयजी के उपदेश से उसने योगिनी एकादशी का व्रत किया, जिससे उसके शरीर का कोढ़ दूर हो गया। मुनि के कथनानुसार उस उत्तम व्रत का अनुष्ठान करने पर वह पूर्ण सुखी हो गया । नृपश्रेष्ठ ! यह योगिनी एकादशी का व्रत ऐसा ही बताया गया है। जो अट्ठासी हजार ब्राह्मणों को भोजन कराता है, उसके समान ही फल उस मनुष्य को भी मिलता है, जो योगिनी एकादशी का व्रत करता है । योगिनी एकादशी महान् पापों को शांत करनेवाली और महान् पुण्य-फल देनेवाली है। इसके माहात्म्य को पढ़ने और सुनने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।''

('पद्म पुराण' के आधार पर)

...तो बात बन गई

आप किसी पाठशाला में नहीं पढ़े,
कोई बात नहीं ।
पंडितों की तरह वेद-पुराण नहीं पढ़े,
कोई बात नहीं ॥
मनःशुद्धि व सद्गुरु पर अटल विश्वास
ये दो बातें यदि आपके जीवन में आ गईं
तो आपकी बात बन गई।

\- दीपक

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सदैव प्रसन्न रहने का परिणाम

मन में दो बातें एक साथ नहीं रह सकतीं। जिस समय मन दुःखी होगा उस समय सुखी नहीं होगा। जिस समय मन सुखी होगा उस समय दुःखी नहीं होगा। इस तथ्य का लाभ उठाना चाहिए।

कितना भी बड़ा भारी दुःख आ जाये, आप अपने मन में सुख भरने की कला सीख लो। अगर सुख भरने की कला सीख गये तो दुःख का प्रभाव आपको दबोच नहीं सकेगा।

एक बार अकबर बड़ा दुःखी हो गया था एवं यमुनाजी में आत्महत्या करने जा रहा था। बीरबल को इस बात का पता चला तो उसने अकबर से कहा :

''जहाँपनाह! खूब हँसो।''

अकबर दुःखी तो था ही, अतः वह चिढ़ गया और बोला :

''चारों तरफ से मुझे मुसीबतों ने आ घेरा है और तुम कहते हो खूब हँसो ?''

यह कहकर गुस्से-गुस्से में अकबर ने अपनी अँगूठी निकालकर जोर से यमुनाजी में फेंक दी और कहा : ''बीरबल! तुम मुझे खूब हँसाते हो ? अब देखो, तुम कैसे रोते हो। आज से आठ दिन के अंदर यह अँगूठी जहाँपनाह की अँगुली में होनी चाहिए, नहीं तो तुम्हारा सिर काट दिया जायेगा।''

बीरबल हँस पड़े। यह देखकर अकबर को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह बोला : ''आठ दिन के बाद तुम्हारी मृत्यु होनेवाली है और तुम हँस रहे हो ?''

बीरबल : ''हाँ। दुःख के समय ज्यादा प्रसन्न होना चाहिए ताकि दुःख गहरा न उतरे। आप भी जहाँपनाह! थोड़ा धैर्य रखें, सब ठीक हो जायेगा।''

अकबर : ''लेकिन अँगूठी लाकर पहनानी ही पड़ेगी। अन्यथा सजा में कोई छूटछाट नहीं होगी।''

बीरबल : ''निश्चिंत रहिए, जहाँपनाह !''

बीरबल गया राजधानी में। उसको हुआ कि : 'क्या पता कब मर जाएँ... अब कुछ नेक काम कर लें।'

जब आदमी को अपनी मृत्यु सामने दिखती है तो उसका सज्जन बनना शुरू हो जाता है। इसीलिए कहा है :

दो बातन को भूल मत जो चाहत कल्याण।
नारायण इक मौत को दूजो श्रीभगवान ॥

मृत्यु कभी भी, कहीं भी, कैसे भी आ सकती है और आयेगी जरूर... इस बात को एवं भगवान को कभी मत भूल। इसीमें हे मानव ! तेरा कल्याण है।

बीरबल तो निश्चिंत होकर सोते थे। एक... दो... तीन दिन बीत गये। चौथे दिन एक घटना घटी। अकबर ने घोषणा करवा दी : ''यदि किसीकी सब्जी आदि न बिके तो शाम को राज्य के गोदाम में छोड़ जाये और उसको वाजिब दाम मिल जायेगा।''

> *दुःख के समय ज्यादा प्रसन्न होना चाहिए ताकि दुःख गहरा न उतरे। जो खुश रहता है उसको कुदरत और भगवान मदद करते हैं। सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है।*

दैवयोग से उसी दिन बाजार में एक बड़ा भारी मच्छ आया । सारा दिन बीतने पर भी वह मच्छ बिका नहीं था । अतः शाम को वह राज्य के गोदाम में लाया गया । यह खबर अकबर तक पहुँची । लोग बोलने लगे कि : 'इतना बड़ा मच्छ आज तक हमने देखा नहीं है ।'

अकबर ने मच्छ मँगवाया एवं कहा : ''मेरे ही सामने इसको चीरो ।''

मछुआरे ने मच्छ को चीरा तो अंदर से अकबर की अँगूठी निकली । अकबर दंग रह गया ! वह बोल उठा : ''तीन दिन पहले फेंकी हुई मेरी अँगूठी ...और मच्छ के द्वारा मेरे राजदरबार में पहुँची ! बीरबल ! यह कैसा जादू ?''

बीरबल : ''जहाँपनाह ! जो खुश रहता है उसको कुदरत और भगवान मदद करते हैं ।''

सदैव सम और प्रसन्न रहना ईश्वर की सर्वोपरि भक्ति है ।

❀

मृत्यु कभी भी, कहीं भी, कैसे भी आ सकती है और आयेगी जरूर... इस बात को एवं भगवान को कभी मत भूल । इसीमें हे मानव ! तेरा कल्याण है ।

अनोखे पहरेदार

एक बार तुलसीदासजी महाराज के यहाँ उत्सव पूरा हुआ । कुछ चोरों ने सोचा कि आज तो महाराज के पास बहुत माल होगा । अतः वे मध्यरात्रि में आये चोरी करने । किन्तु देखते हैं तो कुटिया के द्वार पर दो धनुर्धारी खड़े हैं । एक का वर्ण श्याम है और दूसरे का गौर ।

चोरों को हुआ कि पहरेदार बड़े चौकन्ने हैं । अभी खिसको । जब ये ऊँघने लगेंगे तब आयेंगे ।

थोड़ी देर बाद आये तो वे ही पहरेदार ! इस प्रकार रात्रि में वे कई बार आये लेकिन हर बार पहरेदार सजाग मिले । इतने में प्रभात होने को आई । तुलसीदासजी उठकर बाहर आये तो चोर उनके चरणों में फूट-फूटकर रोने लगे एवं कहने लगे : ''आपके पहरेदारों को बार-बार देखकर हमारा मन बदल गया है । अब हम चोरी नहीं करेंगे । केवल एक बार फिर से आपके पहरेदारों के दर्शन करवा दीजिए ।''

तुलसीदासजी : ''कौन पहरेदार ? मेरे पास कोई पहरेदार नहीं है ।''

चोर : ''महाराज ! दो थे । एक थोड़े ऊँचे आजानुबाहु एवं साँवले-सलौने थे और दूसरे थोड़े छोटे एवं गौरवर्ण के थे । दोनों भाई जैसे लग रहे थे । उनको देख-देखकर इतना अच्छा लगा कि अब हमारा चोरी करने का भाव ही नहीं रहा । आप तो केवल एक बार अपने पहरेदारों का दर्शन करवा दीजिए ।''

तुलसीदासजी समझ गये कि मेरे प्रभु श्रीराम ने इस कुटिया की रक्षा के लिए भाईसहित पहरेदारी की है । मैं कितना परिग्रही ! इतना सारा सामान रखा कि प्रभु को रात भर जागना पड़ा !

तुलसीदासजी ने सारा सामान गरीब-गुरबों में बाँट दिया । कैसे करुणामय हैं भगवान कि वे भक्त की पहरेदारी करने आ गये और कितनी दिव्य समझ है भक्त की कि, 'प्रभु को कष्ट हुआ...' यह जानकर सर्व त्याग कर दिया !

कैसे करुणामय हैं भगवान कि वे भक्त की पहरेदारी करने आ गये और कितनी दिव्य समझ है भक्त की कि, 'प्रभु को कष्ट हुआ...' यह जानकर सर्व त्याग कर दिया !

❀

इस बार हमें भी पार करो...

गुरुदेव ! हमें ऐसा वर दो
हम भवसागर से तर जायें।
इस जन्म-मरण की दुनियाँ से
किसी तरह किनारा कर जायें ॥

कितनी सदियाँ बीत गईं
हम भव में गोते खाते हैं।
लख चौरासी चक्कर में हम
आते हैं और जाते हैं ॥

ये कड़ियाँ कैसे टूटेंगी
इतना हमको तो ज्ञान नहीं।
हम मानव हैं इस सृष्टि के
इसका भी हमें अभिमान नहीं ॥

मार्गदर्शन कर दो तुम
हम कैसे और किधर जायें।
जब जीव सनातन है मेरा
यह मौत भला क्यों आती है ॥

है जीव ब्रह्म का अंश यदि
मृत्यु क्यों उसे डराती है।
कोई ऐसा गुरुमंत्र दो
जिससे जीवन ही सुधर जाये ॥

हम भवसागर में डूब रहे
बापू कोई उपचार करो।
दीक्षा देकर गुरुमंत्र की
इस बार हमें भी पार करो ॥
मेरी गलती से पापों का
यह घड़ा पुनः न भर जाये।
आपके आशीर्वाद बिना
हम भव का पार न पाएँगे ॥
बार-बार मरते, जीते
सच कहता हूँ थक जाएँगे।
मेरे पापों का ढेर देख
यमदूत स्वयं न डर जायें ॥
गुरुदेव ! हमें ऐसा वर दो
हम भवसागर से तर जायें ॥

- जगदीशचन्द्र शास्त्री
सिरसा (हरियाणा).

गुरु-महिमा

संत परम हितकारी रे साधो...
गुरु की महिमा न्यारी रे साधो...
गुरुचरणों में है सब तीर्थ।
गुरुचरणों में चारों धाम ॥
गुरुसेवा ही सर्व की सेवा।
चित्त पाये विश्राम रे मन ॥

गुरुचरणों में ज्ञान की गंगा।
बुरा भी मन बन जाये चंगा ॥
पावन सत्संग की सरिता में।
कर ले तू स्नान रे मन ॥

संत वेश में प्रभु ही आये।
निश्चल भाव से तुझे जगायें ॥
खोज ले अपने अंतर मन में।
अंतर्यामी राम रे मन ॥

गुरुचरणों में कर स्वरूप की पूजा।
हरि गुरु में ना भेद है दूजा ॥

गुरुकृपा जिस पर हो जाए।
पाये पद निर्वाण रे मन ॥

- जानकी ए. चंदनानी 'साक्षी'
अमदावाद

सावधान ! ठगों से बचो

हमें इतिहास का विहंगावलोकन करने पर एक बात स्पष्ट मालूम होती है कि इस धरती पर जब-जब कोई महापुरुष प्रकट हुए हैं, तब-तब सज्जनों ने उनके दिव्य सान्निध्य व सत्संग का लाभ लेकर अपना जीवन धन्य बनाया है और आसुरी प्रकृति के लोगों ने महापुरुषों की निंदा करके अपना और दूसरों का भी घोर पतन किया है।

ईसा मसीह के निकट के शिष्य जुडास ने ही उनसे धोखा किया था। महावीर स्वामी के शिष्य गोशालक ने ही ५०० अन्य शिष्यों (गुरुभाइयों) को बहकाकर महावीर स्वामी के विरुद्ध कुप्रचार अभियान चलाया था। यह सिलसिला इस युग में भी जारी है।

संत श्री आसारामजी आश्रम से निकाले गये कुछ लड़के भी ऐसी ही दुष्प्रवृत्ति में संलग्न पाये गये हैं। हृषिकेश, देहरादून एवं दिल्ली के कुछ श्रद्धालु भक्त उन साधक वेशधारी लड़कों से बुरी तरह ठगे गये हैं।

अतः श्री योग वेदान्त सेवा समिति के द्वारा सभी सत्संगप्रेमी सज्जनों को सूचित किया जाता है कि ऐसे कोई भी व्यक्ति को आर्थिक या अन्य किसी भी प्रकार का सहयोग न दें। आप स्वयं तो ऐसे ठगों से बचेंगे और दूसरों को भी सावधान करेंगे कि वे उनके षड्यंत्र के शिकार न बनें।

दिनांक : २४ से ३० मई '९९ को संत श्री आसारामजी आश्रम, हरिद्वार में आयोजित ध्यान योग साधना शिविर में पूज्यश्री ने आज से तेरह वर्ष पहले लगे हरिद्वार कुंभ के मेले का एक प्रसंग बताया :

''एक साधु एक हाथ ऊपर किये हुए और दूसरे हाथ से धूम्रपान करते हुए आ रहा था। नजदीक आने पर मैंने पूछा : 'भाई ! एक हाथ ऊपर करके क्यों चल रहे हो ? किसीको बुला तो नहीं रहे हो ? कोई दूसरा व्यक्ति भी दिखाई नहीं देता जिसे इशारा कर रहे होगे !'

उसने कहा : 'स्वामीजी ! मैंने बारह वर्ष तक एक हाथ ऊपर करके तप किया है। अब यह कमबख्त नीचे ही नहीं होता।'

मैंने मन-ही-मन कहा : बारह साल एक हाथ ऊपर करके तप किया फिर भी बीड़ी से सुख लेने की बेवकूफी नहीं गई। अरे मन ! तू सद्गुरु के अभाव में न जाने कैसा-कैसा नाच नचाता है ! बेचारे जीव को चौरासी लाख गर्भाग्नि में पकाता है !

पैङ्गल उपनिषद् में ठीक ही कहा है :

'एक हजार वर्ष तक एक पैर पर खड़े होकर किया जानेवाला तप ध्यानयोग के सोलहवें अंश की भी बराबरी नहीं कर सकता।'

बारह साल तक की गई मनमानी साधना से सद्गुरु के प्रत्यक्ष मार्गदर्शन में बारह घण्टे की गई साधना अनंतगुना श्रेष्ठ है।''

सर्वप्रथम पूज्यपाद संतशिरोमणि श्री बापूजी के चरणकमलों में शत-शत नमन... वंदन...

पूज्यवर !

'ओशो' साहित्य का प्रेमी, चिन्तन-मनन करनेवाला मैं... जब बापूजी के अमोघ वचनामृत, सत्संग-गंगा, पावन प्रसाद तथा भक्तिरस का पूर्ण लाभ मुझे मिला तब मैंने देखा कि मेरे पिछले सारे विचार विसर्जित हो चले और मैं दिव्य शांति का अनुभव करने लगा। मेरा मनमयूर नाच उठा। संतश्री के प्रसाद से मुझे चमत्कार महसूस हुआ। मैं अदना, अधम व्यक्ति श्रद्धा, शांति, सत्संग, आनंद का क्या वर्णन करूँ ? क्योंकि **संत की महिमा वेद न जाने... संत ही जानें।**

संतशिरोमणि श्री बापू के प्रेरक मार्गदर्शन में प्रकाशित होनेवाली मासिक पत्रिका **'ऋषि प्रसाद'** भारतवर्ष के कोने-कोने में तथा विदेशों में भारतीय वैदिक सनातन ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करने में पूरी निष्ठा एवं तत्परता से जुटी हुई है।

'ऋषि प्रसाद' विशेष प्रकार से विद्यार्थियों की मेधाशक्ति का विकास करने, मन एवं शरीर को मजबूत बनाने, उनमें स्फूर्ति, उत्साह, शक्ति-सामर्थ्य व कर्त्तव्यनिष्ठा जैसे दैवी गुणों को उभारने में सहायक है।

अतः भारत भर के सभी विद्यालयों की प्रबंध समितियों, प्रधानाचार्यगणों एवं आचार्यगणों से मेरा यही अनुरोध तथा आग्रह है कि आप सभी दिव्य भारतीय संस्कृति की धरोहर, मंगल संदेश देनेवाली इस पत्रिका का लाभ लें।

इस पत्रिका में धार्मिक, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक, नारी उत्थान, साधना, कर्म, युवा कर्त्तव्यपरायणता तथा बालकल्याण के सहज मार्ग परिलक्षित होते हैं। यह पत्रिका ईशनिष्ठा व मानवसेवा के लिए जीता-जागता प्रेरक पुंज है। इससे मानव समाज को नई रोशनी मिलती है, जिसमें पूरे विश्व का महा कल्याण निहित है।

हमें आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण भरोसा है कि हमारी बालशक्ति, युवाशक्ति, नारीशक्ति उपरोक्त संदेश को अपने आचरण में आत्मसात् कर, हृदय में उतारकर भारत को पुनः अपना **'आध्यात्मिक विश्वगुरु'** का स्वर्णिम गौरव वापस दिलाने में सफल होगी।

अंत में, मैं उन सभी को हृदय की गहराई से हार्दिक बधाइयाँ देता हूँ, जो मानवकल्याण के इस दैवी कार्य में संलग्न हैं।

- वी. पी. सिंह
प्राचार्य
साँईंनाथ हिन्दी हाईस्कूल एवं जूनियर कॉलेज, वाशी, नवी मुंबई।

प्लास्टिक के उपयोग से घातक रोग

प्लास्टिक के खिलौने बनाने में थाइलेट्स (PTHYLATES) *नामक एक तैलीय रसायन प्रयुक्त होता है। इसका गंभीर परीक्षण करने के बाद अमेरिकी शोध टीम के प्रमुख डॉ. अर्ल ग्रे ने कहा कि इसके प्रभाव खतरनाक किस्म के हैं। अनेक यूरोपीय देशों में इन पर प्रतिबंध हैं। अतः बच्चों को प्लास्टिक के खिलौने, 'टीथिंग रिंग्स' आदि न दें।*

असंभव को भी संभव कर दिखाया...

मेरी धर्मपत्नी लक्ष्मी गर्भवती थी। अचानक सातवें महीने में उसके गर्भाशय की थैली में छेद हो गया एवं पानी गिरने लगा। उसी वक्त उसे शारदा हास्पिटल में डॉ. प्रकाश पटेल की देखरेख में भर्ती किया गया। पत्नी को इंजेक्शन भी दिये गये लेकिन कोई फर्क न पड़ा। डॉक्टर से पूछा तो उन्होंने कहा :

''सौ प्रतिशत खतरा है क्योंकि बालक का वजन बहुत ही कम है और सारा पानी निकल चुका है। बालक को निकाल दिया जाये, नहीं तो इस केस का ठीक होना मुश्किल है।''

हमने पूज्य बापू से प्रार्थना की एवं सूरत आश्रम में बड़ बादशाह की मनौती मानी : 'यदि बालक को कुछ नहीं होगा तो उसके सवा महीने के होने पर उसको चाँदी से तौलकर मनौती पूरी करेंगे।'

फिर हमने आश्रम के ही औषधालय से दवा ली। हमने पुनः डॉ. प्रकाशभाई का संपर्क किया तो उन्होंने कहा : ''अब मेरे हाथ की बात नहीं है। भगवान पर भरोसा रखो और आराम करो।''

लक्ष्मी ने आराम करते-करते गुरुमंत्र का जप, **'श्रीआसारामायण'** एवं **'श्रीगुरुगीता'** का पाठ चालू रखा। केस तो अब पूज्यश्री के हाथों में सौंप दिया था। बालक का जन्म आठवें महीने में हुआ। उस वक्त बालक का वजन २ किलो ३०० ग्राम था और बालक पूरी तरह स्वस्थ था। कहते हैं कि आठवें महीने में जन्म लेनेवाले बालक का बचना लगभग असंभव होता है और फिर इस केस में तो बालक के पोषण का आधार सारा पानी भी गर्भाशय से निकल चुका था। डॉ. बिपिन देसाई के यहाँ जब बताया तो उन्होंने कहा कि यह तो सचमुच एक विश्व रिकार्ड (World Record) है कि बालक जीवित और स्वस्थ है!

यह सब गुरुदेव का ही चमत्कार था!

डॉ. प्रकाश पटेल को जब सारी बात बतायी तो उनको भी पूज्यश्री के दर्शन की इच्छा हो उठी। वे सूरत आश्रम में दर्शन के लिए आये भी एवं पूज्यश्री के कहने से उन्होंने यह अनुभव लिखकर भी दिया।

सचमुच, पूज्यश्री की महिमा अपरंपार है। उनकी कृपा अवर्णनीय है जो असंभव को भी संभव कर दिखाती है।

- महेन्द्रभाई नरोत्तमभाई पटेल
११४, विक्रमनगर को. ओ. सोसायटी,
वराछा रोड, सूरत (गुज.).

❀

जीवन की दिशा ही बदल दी...

पूज्यपाद सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में प्रणाम!

आज से लगभग दो वर्ष पहले हम पति-पत्नी दोनों आपके दर्शन के लिए अमदावाद आश्रम में आये थे परंतु आपश्री उस समय रतलाम में थे। आश्रम में थोड़ी देर सत्संग सुनकर बड़ बादशाह के दर्शन किये। मेरी पत्नी ने बड़ बादशाह की प्रदक्षिणा नहीं की, वरन् प्रार्थना की कि : 'हमें जब यहाँ सद्गुरु के द्वारा मंत्रदीक्षा मिलेगी तभी हम प्रदक्षिणा करेंगे।'

एक वर्ष पूर्व यहीं द्वारिका में एक संत के साथ हमारी भेंट हुई। हम उनके आश्रम में कभी-कभार सत्संग सुनने के लिए जाने लगे। गुरुपूर्णिमा '९८ के आठ दिन पहले उन्होंने हमें मंत्रदीक्षा के लिए आने को कहा और हम उनके कथनानुसार पूजा का सामान, वस्त्र, नारियल वगैरह लेकर गये। रात्रि के ९ से १२ बजे तक मंत्रदीक्षा की विधि चली। अंत में, नारियल हाथ में लेकर उन्होंने हमसे कहा : ''मंत्रदीक्षा की विधि पूर्ण होने को है। आप अभी-भी विचार कर लो कि गुरु

बनाना है या नहीं । अब गुरुपूर्णिमा के दिन मंत्र दूँगा, तब आना ।'' किन्तु फिर हम नहीं जा सके ।

कहने का तात्पर्य यह है कि बड़ बादशाह ने हमारी की हुई प्रार्थना को सुन लिया एवं उत्तरायण शिविर १४ से १७ जनवरी '९९ में हमें मंत्रदीक्षा द्वारा आपका सहारा मिला एवं तबसे ही हमारा जीवन खिल उठा है।

मंत्रदीक्षा से पूर्व हमारे सब अरमान धूल में मिल रहे थे... मृत्यु सामने दिख रही थी । मेरे शत्रु ने मेरा खून करने के लिए २०-२५ हजार रूपये नगद एवं खूनी को जरा भी सजा न हो- ऐसी गारंटी लिखकर देने की तैयारी दिखाई परन्तु कई गुण्डों में से कोई भी तैयार न हुआ । जहरीली दवा पीकर मर जाने का भी विचार किया किन्तु किसीको पता चल जाये और अस्पताल में ले जाय तो मुश्किल बढ़ जाये- यह सोचकर यह विचार भी छोड़ दिया। क्या करूँ कुछ समझ में नहीं आ रहा था । किसीने ठीक ही कहा है :

जब और सहारे छिन जावें, कोई न किनारा मिलता है ।
तूफान में टूटी किश्ती का, भगवान सहारा होता है ॥

इतने में SONY T.V. पर उत्तरायण शिविर के विषय में जानकारी मिली । पहुँच गया शिविर में और मंत्रदीक्षा भी ले ली। फिर तो मृत्यु का विचार तक नहीं आया। ...और अब तो सदा के लिए आपके श्रीचरणों में ही खो जाने को दिल करता है...

पूज्यश्री के श्रीचरणों में कोटि-कोटि वंदन !

- नरेन्द्र हरिदास मजीठिया
मांगलिक, महाजन बाजार, द्वारिका (गुजरात).

जीवन में बहुत ही बदलाव आ गया

हे अन्तर्यामी गुरुदेव ! आप करुणासागर के पावन श्रीचरणों में मेरे कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम हो !

हे गुरुदेव ! मैं अपने पूर्व जीवन की कुछ घटना आपके समक्ष बताना चाहता हूँ। मैंने दो-तीन बार आपसे मिलने का प्रयास किया लेकिन मौका नहीं मिल सका । अतः मैं आवश्यकता समझकर यह पत्र लिख रहा हूँ।

मैं जब बारह साल का था तब मेरे पड़ोस के कुछ आवारा लड़कों ने मुझे कुछ गलत काम करना सिखाया । उन लड़कों ने मुझे एक गन्दी आदत पकड़ा दी, जिसके चलते पन्द्रह साल की उम्र पूरी होते होते मेरा वीर्य काफी अंश तक नष्ट हो चुका । जब पन्द्रहवाँ साल पूरा होने को ही था कि मैं आणंद से मौसी के घर पालनपुर चला गया। वहाँ पर मुझे पुराने संस्कार सता रहे थे अतः मैंने हस्तमैथुन किया । चार महीने बाद पिताजी ने मुझे वापस बुला लिया। आणंद में आया तो उन्हीं आवारा लड़कों ने मुझे फिर से फँसाया । अब तो दिन में दो तीन बार मेरा वीर्यनाश होने लगा । हस्तमैथुन और स्वप्नदोष खूब होने लगा।

जब मैं १८ साल का हुआ तब मेरे पूज्य साँईं ने मुझे **'यौवन सुरक्षा'** नाम की पुस्तक दी और कहा :

''यह पुस्तक पहले सात बार पढ़ना, फिर हर रोज पढ़ना । तू पूरा पहलवान् बन जायेगा ।''

तब से मैं हर रोज पूज्यश्री की दी हुई प्रसादी पढ़ने के बाद ही दुकान पर जाता था । बस, फिर तो मेरे जीवन में बहुत बदलाव आ गया । उन लड़कों से मेरा साथ भी छुट गया। वे लोग मुझे फँसाने की बहुत कोशिश करते थे, लेकिन मेरे पूज्य साँईं का संकल्प मेरी रक्षा करने लगा।

अब कुसंगति तो छूट गयी लेकिन हस्तमैथुन और स्वप्नदोष ने मुझे बहुत ही परेशान किया था। दिनांक : ५ अप्रैल '९६ में पूज्य बापू जब आणंद पधारे थे, तब मैंने वहाँ आपश्री से दीक्षा ली। दीक्षा के लगभग आठ महीने बाद ७ दिसम्बर '९६ को पूज्य बापू के श्रीचरणों में सदा के लिए आश्रम में समर्पित भी हो गया।

साँईं ! मेरी दस-ग्यारह 'गर्ल फ्रेन्ड' थीं लेकिन उनके साथ मैंने कभी भी ऐसा गन्दा व्यवहार नहीं किया।

पूर्व की ये बातें मुझे कई-कई बार बहुत ही याद आ जाया करती हैं और सताती हैं। इसलिए पूज्य बापू के श्रीचरणों में यह पत्र भेज रहा हूँ। यह पत्र लिखते समय भी मन ने अगर कुछ बेईमानी करवायी हो तो साँईं ! मुझे क्षमा कर देना। पूज्य बापू के आश्रम में आने के बाद भी मुझे कई बार स्वप्नदोष हो जाता है। अभी चार-पाँच दिन पहले भी स्वप्नदोष हुआ था लेकिन अब विकारों के कारण नहीं बल्कि पेट की कब्जियत एवं वायु- प्रकोप के कारण ऐसा होता है।

हे गुरुदेव ! आप तो अन्तर्यामी हैं। यह पत्र लिखते समय मुझसे जो कुछ गलती हो गयी हो और इससे पहले भी जो कुछ गलतियाँ मुझसे हुई हों उसके लिए मुझे क्षमा करना।

अब आगे का पूरा जीवन पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में रहकर सत्यता एवं ईमानदारीपूर्वक अपने प्यारे गुरुदेव की सेवा में और साधना में बिताऊँ, यही पूज्य बापू से प्रार्थना है।

हे गुरुदेव ! मैं यही शुभ संकल्प करता हूँ कि मेरे पूज्य बापू का स्वास्थ्य सदा बना रहे... शरीर सदा निरोगी रहे... तप खूब-खूब बढ़े... आपको मेरा आयुष्य लग जाये... आपका आयुष्य खूब-खूब बढ़े...

(एक साधक)

पूज्यश्री की दीक्षा से विद्याभ्यास में आश्चर्यजनक उन्नति

नीतिन एवं श्रुति ने १३ अप्रैल '९७ को प्रीतमपुरा (दिल्ली) में आयोजित 'विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर' में पूज्य बापूजी से सारस्वत्य मंत्र की दीक्षा ली है तबसे उनकी योग्यता दिन-प्रतिदिन निखरती जा रही है।

दोनों आल इंडिया सीनियर सेकंडरी बोर्ड की १२ वीं कक्षा की परीक्षा में इस वर्ष (१९९९) बहुत अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हुए हैं। नीतिन को दसवीं कक्षा में केवल ६२% अंक ही मिले थे जबकि इस परीक्षा में ८७% अंक प्राप्त हुए हैं तथा चार विषयों में 'डिस्टिक्शन मार्क' प्राप्त हुए हैं : 'एकाउण्ट्स' में ९०%, अर्थशास्त्र में ९२%, 'बिजनेस ऑर्गनाइजेशन' में ९०%, गणित में ७७% अंक। श्रुति को ८३% अंक मिले हैं तथा तीन विषयों में 'डिस्टिंक्शन मार्क' प्राप्त हुए हैं।

बच्चों के पहले के और अब के व्यवहारों में भी काफी परिवर्तन आया है। उनमें एकाग्रता बढ़ रही है। यह सब **'विद्यार्थी तेजस्वी तालीम शिविर'** में प्रातःस्मरणीय गुरुदेव से प्राप्त मंत्रदीक्षा, उनका सान्निध्य एवं करुणा-कृपा से ही संभव हो सका है।

- महेश

शिव ऑटो एजेन्सीज, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

मुंबई : मायानगरी मुंबई में ६ जून '९९ को पूज्यश्री का एक दिवसीय सत्संग-प्रवचन सम्पन्न हुआ। प्रथम तीन दिन श्री सुरेशानंदजी द्वारा प्रवचन दिया गया।

भौतिक आकर्षणों से प्रभावित इस व्यस्त महानगरी में ज्ञान-भक्ति-योग के अनुभव-संपन्न पूज्य बापू की पीयूषवाणी का रसपान करने विशाल जनसमुदाय उमड़ पड़ा था। भौतिक वस्तुओं, परिस्थितियों, व्यक्तियों से सुख चाहनेवाले मनुष्य को सुख तो मिलता नहीं, केवल क्षणभर का सुखाभास ही मिलता है। फलतः प्रत्येक मानव सुख की तलाश में ही निमग्न है जिसकी कुंजियाँ पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचन में सहज ही मिलती हैं और जिसे आचरण में लाने पर प्रत्येक व्यक्ति उस सच्चे सुख का आस्वादन कर सकता है।

पूज्य बापू ने यहाँ लोगों को स्वस्थ, सुखी व सम्मानित जीवन जीने की अनेक युक्तियाँ बताईं।

अमदावाद : पूज्य बापूजी जब हिमालय के एकान्तवास से अमदावाद पधार रहे थे तो मार्ग में हरिद्वार आश्रम, दिल्ली आश्रम, निर्माणाधीन मुजफ्फरनगर आश्रम, सत्संग-भवन खतौली आदि स्थानों के साधकवृंद

गुरुदर्शन के लिए आँखें बिछाये हुए थे। कुछ मिनटों के लिए ही सही, गुरुदेवश्री के दर्शन-सत्संग प्राप्त कर सभी भावविभोर हो उठे।

२५ जून की शाम पूज्यश्री विमान द्वारा दिल्ली से अमदावाद पहुँचे, जहाँ २६ से २८ जून '९९ तक तीन दिवसीय ध्यान योग शिविर व पूर्णिमा दर्शनोत्सव सम्पन्न हुआ। देश के विभिन्न प्रांतों से आये हुए साधकों को उन्नति का मार्ग बताते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''गाँधीजी सप्ताह में एक दिन मौन रहते थे। उससे उन्हें अधिक काम करने की क्षमता प्राप्त होती थी।

गंगोत्री में कई वर्षों से मौन रहे हुए एक महात्मा ने अपने जीवन में बहुत सारी आध्यात्मिक उन्नति की। उन्हें मनाकर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास कराने में मदनमोहन मालवीयजी सफल हुए। मौन रखने से उन महात्मा के आश्रम की गति-विधियाँ सुचारुरूप से चलती रहीं।

अतः वाणी का अपव्यय न करें। कभी-कभी मौन का अभ्यास करें। न बोलने में नौ गुण।''

इस प्रकार शिविर में साधकों को जप, मौन, ध्यान, सेवा, सुमिरन की सत्प्रेरणा और कई आध्यात्मिक प्रयोगों का प्रसाद मिला। अगली पूनम कहाँ, कब होगी उसका भी इन्तजार...

*

दिनांक : ११ जून '९९ को शाम छः बजे भारत के राष्ट्रपति श्री श्री के. आर. नारायणन से परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के सुपुत्र श्री नारायण साँईं की भेंटवार्त्ता हुई।

नेपाल व भूटान के पाठकों के लिए सूचना

नेपाल व भूटान के प्रेमी पाठकों से निवेदन है कि डाक-व्यय की वृद्धि के कारण नेपाल व भूटान के लिए 'ऋषि प्रसाद' का सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार रखा गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि प्यारे पाठकगण पूज्यश्री के सत्साहित्य के प्रति अपना प्रेमभाव पूर्ववत् बनाये रखेंगे।

वार्षिक : रू. ७५ पंचवार्षिक : रू. ३०० आजीवन : रू. ७५०

पूज्य बापू के पावन सान्निध्य में गुरुपूर्णिमा महोत्सव

दिनांक	शहर	कार्यक्रम	स्थान	संपर्क
१८ से २० जुलाई '९९	इन्दौर में	गुरुपूर्णिमा महोत्सव	संत श्री आसारामजी आश्रम, खँडवा रोड, बिलावली तालाब के पास, इन्दौर (म. प्र.).	आश्रम फोन : (०७३१) ४७८०३१, ४६११९८.
२३ से २५ जुलाई '९९	दिल्ली में	गुरुपूर्णिमा महोत्सव	स्वर्ण जयंती पार्क, सैक्टर १०, रोहिणी, दिल्ली।	आश्रम फोन : (०११) ५७२९३३८, ५७६४१६१.
२७ और २८ जुलाई '९९	अमदावाद में	गुरुपूर्णिमा महोत्सव	संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५.	आश्रम फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध। तुलसी संगत साध की, हरे कोटि अपराध ॥
मायानगरी मुंबई के सत्संगी माया से पार होने की कला सीखते हुए।

भारत के राष्ट्रपति श्री श्री के. आर. नारायणन के साथ दिनांक : ११ जून '९९ को
परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के सुपुत्र सौम्यमूर्ति श्री नारायण साँई की भेंटवार्त्ता